इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष २ अंक २ आषाढ़ मास कलियुगाब्द ५१११ जुलाई २००६

मार्गदर्शक :
ठाकुर राम सिंह
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा
प्रो० सतीश चन्द्र
सुश्री चारु मित्तल

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपये

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

उद्‌बोधन — मा० मोहन राव भागवत — ३

काल तत्त्व
- श्वेत वाराह कल्प — वासुदेव पोद्दार — ११

अवबोधन
- तुफाने नूह की वास्तविकता इतिहास के परिप्रेक्ष्य में — ठा. नगीना राम परमार — २२
- हिन्दू और बौद्ध — डॉ० शारदा सिन्हा — २७
- रणथम्भौर का हम्मीर चौहान — गोकुल चन्द गोयल — ३५

पर्व त्यौहार
- श्रावणी पूर्णिमा — चेतराम गर्ग — ४०

ध्येय पथ
- हिमालय की गोद में... — नरेन्द्र सहगल — ४३

कार्यशाला — ४६

सम्पादकीय

100 वर्ष पहले का उत्तरपाड़ा भाषण

उत्तरपाड़ा *पश्चिमी बंगाल प्रान्त में हुगली नदी के तट पर एक कस्बा है। इस स्थान पर महर्षि अरविन्द घोष ने कलियुगाब्द के 5011 वें वर्ष में 30 मई, 1909 को एक ऐतिहासिक भाषण दिया जिसमें भारतवर्ष का वास्तविक मौलिक चित्र उज्ज्वल होता है। इस वर्ष उत्तरपाड़ा भाषण के 100 वर्ष पूर्ण हुए हैं। अतः यह वर्ष इस भाषण का शताब्दी वर्ष है।*

अरविन्द घोष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अग्रणी नेता थे। बाद में इन्होंने राजनीति से विरक्त हो कर अध्यात्म साधना का मार्ग अपनाया और तब महर्षि अरविन्द के नाम से जगत् प्रसिद्ध हुए। भारत के स्वाधीनता संग्राम में उनका राजनीति से हट कर भी सक्रिय योगदान रहा। राजनीतिक जीवन काल से ही इन्होंने भारत को एक सशक्त सनातन शक्ति के रूप में देखा। अंग्रेज सरकार ने अलीपुर षड़यन्त्र कांड के मिथ्या आरोप में इन्हें 2 मई, 1908 को जेल की काल कोठरी में भेज दिया। इन पर लगे आरोप प्रामाणित नहीं हो सके और एक वर्ष बाद 5 मई, 1909 को ये कारागार से मुक्त हो गए। 30 मई, 1909 को उत्तरपाड़ा में इनके सार्वजनिक स्वागत का आयोजन हुआ। इस अवसर पर इन्होंने कारागार में मिला ईश्वरीय संदेश जनता को सुनाया जिसमें महर्षि अरविन्द ने कहा—

कारागार के एकान्तवास में मुझे भगवान् ने अपने चमत्कार दिखाए और मुझे हिन्दू धर्म के वास्तविक सत्य का साक्षात्कार करवाया। हम प्रायः हिन्दू धर्म और सनातन धर्म की बातें करते हैं, किन्तु हम में से कम लोग जानते हैं कि यह धर्म क्या है? दूसरे धर्म मुख्य रूप से व्रत, दीक्षा और मान्यता को महत्त्व देते हैं, लेकिन हिन्दू सनातन धर्म तो स्वयं जीवन है। यही धर्म देने के लिए भारत उठ रहा है। भारतवर्ष दूसरे देशों की तरह अपने को सुदृढ़ करके दूसरों को कुचलने के लिए नहीं उठ रहा है। यह पूरे विश्व में सनातन ज्योति फैलाने के लिए उठ रहा है। भारत का जीवन सदा ही मानव जाति के लिए रहा है। इसे अपने लिए नहीं, मानव जाति के लिए महान होना है। इसलिए जब यह कहा जाता है कि भारत का उदय होगा तो उसका अर्थ होता है, सनातन धर्म का उदय होगा। धर्म के लिए और धर्म द्वारा भारत का अस्तित्व है।

शताब्दी वर्ष में राष्ट्र की प्रबल आध्यात्मिक शक्ति के चैतन्य के लिए उत्तरपाड़ा का ऐतिहासिक भाषण अतीव स्मरणीय है। इस के अनुगमन से भारत के प्रखर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आदर्श मार्ग प्रशस्त होगा।

विनीत,

डॉ0 विद्या चन्द ठाकुर

उद्‌बोधन ✍

इतिहास घटित होता – निर्देशित नहीं

● मोहन राव भागवत
प. पू. सरसंघ चालक

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान में चैत्र शुक्ल ९,१०,११ कलियुगाब्द ५१११ तदनुसार ३,४,५ अप्रैल, २००९ की त्रिदिवसीय प्रतिनिधि बैठक के समारोप कार्यक्रम में प0 पू0 सरसंघचालक माननीय मोहन राव भागवत जी का प्रेरक उद्‌बोधन, इतिहास के महत्त्व का गहन एवं सहज प्रतिपादन है। सर्वजन हितार्थ यह उद्‌बोधन यहां प्रकाशित किया जा रहा है।

अपने इतिहास के प्रति आस्था होना, मानव समाज का श्रेष्ठ गुण है, परन्तु आज हमारे में इतिहास के प्रति अनास्था का दुर्गण बढ़ गया है। हाल ही में जो व्यापारीकरण का दौर चला है, उसने हमारी इस सोच को ओर गहरा किया है। विश्व को बाजार बनाने वाली शाक्तियों ने मनुष्य जीवन के बारे में जो कुछ बोला और लिखा है, उस में इतिहास जैसे विषय को अनावश्यक बताया गया है। उनकी मान्यता है कि इतिहास को पढ़ने और पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यक्तिगत जीवन में हमारी आवश्यकताएं कैसे पूरी हो, अभी का गुजारा कैसे हो, वर्तमान जरूरतें कैसे पूरी हो, बस इतना मात्र सीखना और सिखाना चाहिए। ऐसा दृष्टिकोण देने से हमारा संकट और बढ़ गया है। देश के अन्दर अपने जीवन का विचार करने वाला युवक इतिहास जैसे विषय में शोध और पढ़ाई करने तब जाता है जब अन्य क्षेत्रों में जाने के उसके दूसरे सभी विकल्प बन्द हो चुके होते हैं। यही नहीं मूल विज्ञान के क्षेत्र में भी युवक तब जाता है जब उसके अन्य क्षेत्र में जाने के रास्ते नहीं दिखाई देते। आज वनस्पति विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान के प्राध्यापक मिलना कठिन हो गया है क्योंकि विद्यार्थी इन विषयों की ओर कम जा रहे हैं। आज विद्यार्थियों के लिए आकर्षक क्षेत्र हैं– संगणक, वाणिज्य, इंजिनियरिंग व चिकित्सा आदि। विश्व के व्यापारीकरण का विचार करने वाली इन शक्तियों ने इस प्रकार की एक विशेष मनोवृति दुनिया के अन्दर पैदा कर दी है। ये शक्तियां जैसा चाहती है, वही करवाती हैं। ऐसी स्थितियां उत्पन्न करना इन की प्रवृत्ति है क्योंकि इस के बिना उनकी दुनिया चल नहीं पाती।

एक व्यक्ति को गणित नहीं आता और उसकी संगीत में रूचि है। कोई

चित्रकला में रूचि रखता है लेकिन इतिहास, चित्रकला, संगीत, भूगोल, जीव विज्ञान, साहित्य एवं कला आदि विषयों की इन शक्तियों की दृष्टि से कोई आवश्यकता नहीं है। यदि इन विषयों में लोगों ने रूचि लेना शुरू कर दिया तो इन शक्तियों का काम नहीं चलेगा। इसलिए व्यापारीकरण का दृष्टिकोण रखने वाली शक्तियों द्वारा सुझाये गये मार्ग पर चलना ही लोगों की मानसिकता बन जाए, ऐसा निर्देशित जीवन चलाने की इन की मनोवृत्ति है।

ये ऐसी परजीवी शक्तियां हैं जिनमें अपने आप जीवित रहने की शक्ति नहीं है। एक उदाहरण से इनके बारे में समझना हो तो मधुमखी जैसा एक परजीवी हवा में तैरता रहता है। उड़ते—उड़ते वह मकड़ी से टकराकर उसके आवरण में घुस जाता है। धीरे—धीरे मकड़ी के शरीर का शोषण करना शुरू कर देता है। मकड़ी दो पेड़ों के बीच में अपना जाला बुनती रहती है और जाले में फंसने वाले कीटों का वह भोजन करती है। इस काम के लिए वह दिन भर इधर से उधर घूमती रहती है। उसका यह क्रम चलता रहता है। परजीवी कीट सबसे पहले मकड़ी के जाल बुनने की गति को बढ़ता है। इससे मकड़ी की जाल बुनने की गति बढ़ जाती है और उसमें कीट भी अधिक फंसते हैं और उसके खाने की गति भी बढ़ जाती है। लेकिन विकास मकड़ी के बजाए परजीवी का होता है।

ऐसा कहते हैं कि आज भारत इन परजीवियों के कारण बहुत उत्कर्ष पा रहा है। आज इस तथाकथित विकास की गति का लाभ उठा रहा है। भारत आर्थिक महाशक्ति बनता जा रहा है। किन्तु जब हम देखते हैं कि महाशक्ति बनने का हमारा रास्ता कौन सा है तो दिखाई देता है कि यह रास्ता परजीवियों का है। सब चीजें स्वयं पनप रही हैं। हमारा विकास नहीं हो रहा है। कौन बढ़ रहे हैं? वही परजीवी जो दूसरों का शोषण करके जीना चाहते हैं और यह सब जानते हैं। ऐसा करते–करते वह परजीवी कीट जब मकड़ी के दिमाग में प्रवेश करता है, उस समय मकड़ी अपना संतुलन खो बैठ़ती है। ऐसी स्थिति में मकड़ी दो पेडों के बीच जाला बुनने के बजाए अपने चारों ओर जाला बुनना शुरू करती है। जाला बुनते–बुनते वह भूखी रह जाती है और जाल में फंस कर मर जाती है। ऐसी स्थिति में वह परजीवी जीव मकड़ी के शरीर से निकलकर किसी दूसरे कीट के शरीर में घुस जाता है। ये विश्व का व्यापारीकरण करने व चाहने वाली शक्तियां परजीवी हैं। जहां ये प्रवेश करेंगी वहां ये उस समाज का शोषण ही करेंगी। धीरे–धीरे वहां के मूल जीवन को स्खलित कर देती हैं। जैसे ही वहां का मूल समाज नष्ट हो जाता है उसके अवशेषों पर खड़ा होकर दुनिया को निर्देशित करना शुरू कर देती हैं। मूलभूतन्यूनतम बातों को निर्देशित करने के बाद मनुष्यों की वृत्तियों को खुला छोड़ना प्रकृति है। भगवान ने मनुष्यों को न्यूनतम निर्देश, शक्तियां व गुणवत्ता दी और बाकी स्वतंत्र छोड़ दिया है। उसके सामने संभावनाएं दी हैं — तुम यहीं रहो, देव बनो या राक्षस बनों यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है क्योंकि सब करने की शक्ति मनुष्य में ही है। जब तुम पुकारोगे तो मैं सहायता भी करूंगा लेकिन बनना तुम को ही है। ऐसा भगवान उपदेश देते हैं।

मुझे राष्ट्रधर्म पत्रिका से पत्र आया कि हम इतिहास विषय पर एक विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं, उसके लिए आप कुछ लिख कर दें। मेरे मन में विचार आया कि क्या मैं लिख कर दूं? राष्ट्रधर्म पहले भी इतिहास विषय पर कई विशेषांक निकाल चुका है। इतिहास संकलन योजना का कार्य हम बहुत दिनों से कर रहे हैं, क्या लिखूं? सारा चिंतन करते–करते यह बात ध्यान में आयी कि इतिहास घटित होता है निर्देशित नहीं। आज जो हम इतिहास पढ़ रहे हैं वह निर्देशित इतिहास है। क्योंकि घटनाओं को निर्देशित ढंग से ठूंसने की इच्छा रखने वाली शक्तियों का आज बोलबाला है और हमारा संघर्ष इन के खिलाफ है। हमारा अर्थात् भारत वर्ष, हिन्दुओं और संघ के स्वयंसेवकों का संघर्ष इनके विरुद्ध है। जब डा० हेडगेवार जी ने १९२० में यह प्रस्ताव कांग्रेस कमेटी के अन्दर रखा कि कांग्रेस का लक्ष्य भारत की संपूर्ण स्वतंत्रता होना चाहिए और दूसरा दुनिया को पूंजीवादी शक्तियों के चंगुल से मुक्त करवाना चाहिए। ये दोनों बातें स्पष्ट करती हैं कि उन्हें इस बात का आभास था कि ये दोनों शक्तियां राष्ट्र और दुनिया के लिए गंभीर खतरा है। यह देवी प्रवृत्ति का संघर्ष दानवी प्रवृत्ति के साथ है। यह लगातार चलने वाला संघर्ष है। इसके बारे में बार–बार नये–नये अध्याय लिखे जाते रहे हैं। न्यूनतम अध्याय लिखने का जिम्मा हमारे हिस्से आया है और हम उसको लिखेगें। हम वस्तुस्थिति के आधार पर इसको लिखेगें। अलंकारिक ढंग से लिखना हमारा उद्देश्य नहीं है। इसको समझकर लिखना है। वर्णन आता है कि जब राम रावण युद्ध चल रहा था उस समय पहले पहल राम की सहायता के लिए वानरों और विभीषण को छोड़कर कोई आगे नहीं आया। युद्ध में राम ने जैस–जैसे अपना पराक्रम दिखाया तो देवताओं को लगा कि राम तो जीतने वाले हैं, तब जाकर देवराज इन्द्र ने अपना रथ राम को युद्ध लड़ने के लिया दिया। उससे पहले देवता तालियां बजाते रहे पर कोई भी सहायता के लिए आगे नहीं आया। पलड़ा किस ओर भारी रहता है, ऊंट किस करवट बैठेगा, सब यही देखते रहे। हम हिन्दू भी बहुत दिनों से यही कर रहे हैं। संघ ने १९२५ में काम शुरू किया। बुद्ध के काल से भी यही काम होता आ रहा है। अब ऐसे चिन्ह प्रकट हो रहे हैं कि अब विजय हमारी सुनिश्चित है। हमने कभी सोचा भी नहीं था कि जैसे बाबा साहब आपटे ने दशावतार की मीमांसा की है वैसा दुनिया मानेगी। मगर आज दुनिया उसे मान रही है। आज यह प्रत्यक्ष देखने को मिल रहा है। कीनिया के वनवासी ईसाई कहते हैं कि उनका जीवन भारत के देहाती जीवन से मेल खाता है। नैरोबी के संग्रहालय में यह सब देखा जा सकता है।

उन्होंने वहां एक गांव का प्रतिरूप तैयार किया है। आप को उस प्रतिरूप को देखकर लगेगा कि आप उत्तर प्रदेश या बिहार के किसी गांव में आ गये है। वही मिट्टी की झोंपड़िया, रसोई घर में प्रवेश करेंगे तो अंदर चकला–बेलन व सील बट्टा रखा मिलेगा। बाहर बैल गाड़ी का चक्का पड़ा मिलेगा। अंदर एक गोबर से लीपा हुआ पवित्र कमरा है। वहां कोई भी जूते पहन कर नहीं जा सकता। गाय रखी हुई है वह भी भारतीय नस्ल की। गाय को वहां बड़ा पवित्र मानते हैं। वहां गौ हत्या नहीं होती।

नैरोबी के एअरपोर्ट को अंबाकाशी कहा जाता है। अंबा यानि माता काशी यानि पवित्र क्षेत्र। वहां के लोगों ने मिलने पर बताया कि हमारा पूर्वज नौका में बैठकर भारत से यहां आया था। उस समय समुद्र इतना गहरा और लम्बा नहीं था। हमारा यह क्षेत्र भारत से अलग हुए अभी थोड़े ही वर्ष हुए हैं। इतिहास में लाखों वर्ष भी थोड़े ही होते हैं। उन्होंने बताया कि हमारे इतिहास में एक कथा है कि उनके यहां पुष्यवान राजा था। उसका सिंहासन धरती से ऊपर उठा रहता था। एक बार उसको झूठ बोलना पड़ा और उसका सिंहासन धरती पर आ गया। उन्होंने कहा कि ऐसी ही एक कथा आप के महाभारत में भी है। दक्षिण अमेरिका में लोग मिलते हैं तो वे कहते हैं कि हम भारत से आए हैं।

असम में एक प्राध्यापक हैं जो अपने कार्यकर्ता भी हैं उन्होंने लिखा है कि दक्षिण अमेरिका की सारी जमातें राक्षस जमातें हैं। देवासुर संग्राम में ये सब भारत में ही थे। सभी एक ही पूर्वजों की संताने हैं। देवासुर संग्राम में असुर हार गये और उन्हें देश निकाला दिया गया। उस समय वे अफ्रीका चले गए। दोबारा देवासुर संग्राम हुआ फिर युद्ध के लिए भारत आए। युद्ध में फिर हार गए। इस हार के बाद वे दक्षिण अमेरिका चले गए। एक ऐसी किताब उस कार्यकर्ता ने लिखी है जिसमें इस प्रकार का वर्णन आता है। ऐसा वहां के लोग भी कहते हैं। हाल ही में विश्व भारती की ओर से एक कार्यक्रम नागपुर में सम्पन्न हुआ। उस में विभिन्न देशों के प्रतिनिधि आए थे। इस कार्यक्रम के बीच में रथ सप्तमी का त्यौहार भी आया। हमारे लोगों ने कहा कि आज हमारा त्यौहार है तो उन विदेशों से आए कुछ लोगों ने कहा कि आज हमारा भी त्यौहार है। हम भी पूजा करने वाले हैं। उन्होंने कहा कि हमारी पूजा घर के आंगन में होती है। हमारे लोगों ने भी कहा कि हमारी पूजा भी घर के आंगन में होती है। जिस घर में ठहरे हुए थे वहां दोनों की पूजा शुरू हो गई। हमारी महिलाओं ने रंगोली बनानी शुरू की। भगवान सूर्य का चित्र उकेरा, उसने भी वैसा ही सर्कल अपने दण्ड से उकेरा। इधर गणेश जी की स्थापना हुई उधर भी इसी प्रकार का कुछ स्थापित किया। इधर कुछ मन्त्र बोले गए उधर भी वह अपनी भाषा में कुछ बोलने लगा। बिलकुल एक सी पूजा। उसने कहा हम सूर्य भगवान की पूजा करते हैं। हमने भी कहा कि हम सूर्य भगवान की पूजा करते हैं। दुनिया एक दूसरे के निकट आ रही है। ऐसा क्यों हो रहा है? इसलिए कि इस निर्देशित जीवन चक्र से छुटकारा पाकर एक मानवीय मूल्यों पर आधारित जीवन की परंपरागत शैली में दुनिया सांस लेना चाहती है। इस काम के लिए थोड़ा समय लगता है। क्यों समय लगता है? इसलिए समय लगता है कि हमारी तैयारी नहीं हुई होती।

कल हमीरपुर में सार्वजनिक कार्यक्रम था। वहां लाऊडस्पीकर फेल हो गया। तो मैंने कहा कि कार्यक्रम समय पर ही शुरू होगा। कार्यक्रम शुरू हो गया किन्तु सब जगह ऐसा नहीं होता। अभी थोड़ा रूकिये, थोड़ी तैयारी होनी है, थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए। क्या देखते हैं कि लोग आए कि नहीं। सवाल केवल समय का नहीं अपनी तैयारी का भी हैं। हमारी भूमि जीवन के मतैक्य की भूमि है। यहां जो तैयारी पहले से ही हुई पड़ी है उसे

केवल व्यवस्थित ही तो करना है। कुछ चीजें इधर—उधर खो गई है, उन्हें यथा स्थान व्यवस्थित करना हैं। मुख्य सवाल लोगों को जोड़ने का है। उसको हमने प्रारंभ किया संघ के रूप में। अभी संख्या पूरी नहीं हुई है। केवल कार्यक्रम करने लायक भीड़ जुट गई है। ऐसा लगता है। उस व्यवस्था के काम में बहुत प्रकार से लोग, संगठन लगें और कार्यकर्ताओं की टोली का निर्माण किया जाना चाहिए। इस संस्थान को केन्द्र में रख करके अपनी टीम को यह समझना चाहिए कि हम बड़ी योजना के तहत काम कर रहे हैं। यह हमें सदैव याद रखना चाहिए। हम संकल्प इसलिए लेते हैं कि किस स्थान पर खड़े होकर हम काम करने जा रहे हैं। इसी का उल्लेख उस में रहता है। उस संकल्प में मानसिक दृष्टि से यह भी जोड़ना चाहिए कि किस योजना में किस स्थान पर खड़े होकर काम कर रहे हैं। मैंने थोड़ा स्मरण करवाया कि हम एक बड़ी योजना के अंग हैं। हमें अपनी गति उस योजना के हिसाब से रखनी होगी। उस हिसाब से या तो हमें अपनी गति को बढ़ाना होगा या कम करना होगा। हमें यह विचार करना होगा कि हम एक व्यूह में चल रहे हैं। उस व्यूह में अलग अलग टुकड़ियां रहती हैं। सब टुकड़ियों को व्यूह की गति के हिसाब से अपनी गति को निर्धारित करना होता है। जिससे व्यूह की संरचना के हिसब से बढ़ सके। व्यूह के साथ उसे अपना समायोजन करना होता है।

व्यूह का केन्द्र संघ है। अब इस शोध संस्थान का नाम होने लगा है। लोग पूछने लगे हैं। और भी नाम बढ़ेगा। नाम होते समय यह ध्यान रखना होगा कि हमारी हस्ती के नाते एक और बड़ी हस्ती भी है। पूजनीय श्रीगुरु जी कहते थे—'' मैं एक साधारण स्वयंसेवक हूं''। वह पुस्तिका आप लोगों ने देखी होगी और पढ़ी भी होगी। पूरी व्यूह रचना में सरसंघचालक को भी यह ध्यान रखना होता है कि मैं एक स्वयंसेवक हूं। संघ के विशेषण में मैं सरसंघचालक हूं। इस पूरे व्यूह में अपना एक स्थान है और हम एक स्थान पर काम करते हुए आगे बढ़ रहे हैं। माननीय ठाकुर राम सिंह जी के दृढ़ संकल्प और हम सब के परिश्रम के आधार पर अति अल्प अवधि में यह एक अच्छा प्रकल्प खड़ा हो गया है। दो बड़े भवन दिखते हैं। अच्छा सुन्दर स्थान दिखता है। कार्यक्रम भी अच्छे होते हैं। जरूरत के हिसाब से सब साधन भी खड़े हो गए हैं, यह सब दिखाई देता है। हमें ओर आगे बढ़ना हैं। अभी तो यह प्रारम्भिक अवस्था है। असली काम तो आगे है। इसलिए हमने योजना बनाई उस योजना के अनुरूप कार्यकर्ताओं को खड़ा करना पड़ेगा। पांच बातें जो गीता में कही गई हैं—

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथ्विधम्।
*न्याय्यं व विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः।।*१५/१८

अधिष्ठान तो हमारा निश्चित है। सत्य है, पवित्र है। कार्यकर्ता, करण और जीवन की चेष्टाएं इसी का सवाल रहता है। पहले तो हमें विभिन्न काम करने वाले विभिन्न कार्यकर्ता खड़े करने पड़ेंगे। विभिन्न प्रकार के काम हैं। प्रत्यक्ष काम करने वाली टोली तो यहां पर है साथ अनेक अप्रत्यक्ष काम भी है। उसका मार्गदर्शन करने वाले ज्येष्ठ लोग भी

हैं। जैसा यह परिसर खड़ा हो गया है, उसकी व्यवस्था और विकास करने वाली एक पूरी टीम तैयार करनी पड़ेगी। व्यवस्था के लिए धन की जरूरत भी पड़ती है। आगे यहां शोध कार्य होना है, उसके लिए भी धन लगेगा। शोधकर्ताओं को कुछ प्रेरणा भी देनी पड़ती है उसके लिए भी धन लगता है। समर्पण भाव से काम करने वाले कुछ लोग तो मिल ही जाएंगे लेकिन संपूर्ण समाज अपने राष्ट्र के लिए अभी इस समर्पण भाव से काम करने की मनोवृत्ति का नहीं बना है। यदि बना होता तो क्या बात थी? लेकिन ऐसा नहीं है। कुछ तो आज के जमाने के हिसाब से प्रचलित तरीकों का प्रयोग करना पड़ेगा। उसके लिए धन जुटाने वाली एक टोली खड़ी करनी पड़ेगी। उसके लिए कार्यकर्ता चाहिए। ये तरह तरह की टोलियां चाहिए इस पर गंभीरता से विचार हो। समय समय पर अपने काम की प्रसिद्धि करनी पड़ेगी तभी लोग आकृष्ट होकर यहां आएंगे। एक काम के लिए एक कार्यकर्ता, कार्यकर्ताओं की इतनी बड़ी फौज बने जो सभी कामों को सुचारू रूप से चला सके।

भगवान रामचन्द्र जी वनवास के समय चित्रकूट आए और वहां उन्होंने कुटिया के लिए एक स्थान सुनिश्चित किया। उन्होंने लक्ष्मण जी को कहा कि यहां एक कुटिया बनाओ। तब लक्ष्मण जी ने वहां एक कुटिया बनाई। वर्णन ऐसा आता है कि सारी कुटिया लक्ष्मण जी ने बनाई और कहां बनानी है यह राम जी ने बताया। कुटिया बनाने के लिए सबसे पहले लक्ष्मण को स्थान समतल करना पड़ा होगा। जंगल से लकड़ी काट कर लाई होगी, कौन लकड़ी अच्छी रही होगी इस का चयन किया होगा। छत डालनी थी तो उसके लिए कैंचियों की जरूरत भी थी। अर्थात् उस पर्ण कुटिया को सब प्रकार से व्यवस्थित, सुरक्षित तैयार करने के लिए वानिकी, भू–वैज्ञानिकी, वास्तु शास्त्र, अभियांत्रिकी व बढ़ईगिरी से लेकर सब कार्य में प्रवीणता हासिल की वह भी कब और कैसे? काम छोटा था इस कारण लक्ष्मण ने वह सब कर लिया। जमाना भी ऐसा था। आगे सेतु बंधन का बड़ा काम आया। रामचन्द्र जी ने सागर की पूजा अर्चना अर्थात् पूर्ण निरीक्षण किया। कहां से सेतु बंन सकता है? नीचे–ऊपर सभी प्रकार का निरीक्षण किया। सागर ने जब रास्ता नहीं दिया तो रामचन्द्र ने सोचा कि अब कोई जालिम उपाय करना होगा। विनय ना मानत जलधि जड.................। रामचन्द्र ने सोचा की अब अणु अस्त्रों का प्रयोग करना पड़ेगा जिससे सागर सूख जाए। जैसे वर्तमान दौर में सेतु तोड़ने वालों ने सोचा था कि सेतु आसानी से न टूटे तो विस्फोट कर देंगे। उस समय राम ने भी ऐसा सोचा तो सागर में खलबली मच गई। सागर की सारी जानकारी रखने वाला राजा वहां आ गया। उसने भगवान रामचन्द्र जी से हाथ जोड़ कर कहा कि वह आसानी से और बढ़िया सेतु बनाने का स्थान बताएगा। स्थान को बताने वाला कोई था, सागर की जानकारी रखने वाला कोई और था। इंजिनियर नल और नील थे। सेतु को बनाने का ठेका वानर सेना ने ले रखा था। सेतु में काम आने वाली सामग्री दूर दूर से लाई गई। लक्ष्मण ने चित्रकूट में कुटिया बनाने का काम अकेले ही किया था। सेतु बंधन के कार्य में अधिक और भिन्न–भिन्न

प्रकार की निपुणता प्राप्त लोग लगे। आज का दौर विशेष निपुणता का दौर है। इतिहास के इतने बड़े काम करने के लिए एक टीम की जरूरत है। यह ठीक है कि ठाकुर राम सिंह जी हैं। उनका धक्का (प्रेरणा) इतने जोर का लगता है कि हम सब लोग काम में लगते हैं। यह विचार इस प्रकल्प के लिए अति आवश्यक हो गया है कि इस का विचार कर लिया जाए।

काम करते करते यह ध्यान भी रखना पड़ेगा कि अपने काम को समझाने में अनेक प्रकार की दिक्कतें आएगी। दिक्कतें विरोधियों की नहीं है। विरोधियों द्वारा ठूंस ठूंस कर बिठाए गए झूठ में जाकर हमें स्थापित होना है। दूसरा आज काम करने का तरीका गलत चल रहा है, उसी में से मार्ग निकलकर हमें स्थापित होना होगा। इसके अतिरिक्त हमारे समाज में अन्य अनेक भ्रांतियां उत्पन्न हुई हैं। जैसे सरस्वती नदी की खोज का अभियान चला है। उसे आज खोज लिया गया है। पर लोग आज भी प्रश्न करते हैं कि प्रयाग में जो लुप्त सरस्वती है उसके बारे में क्या है? लोग प्रश्न करते हैं कि आप पहले की अवधारणा को कैसे बदलेंगे कि सरस्वती कहां से चलती थी।

जैसे घनश्याम जी ने पुस्तक लिखी शिवाजी महाराज के बारे में तो उसमें उन्होंने लिखा है कि शिवाजी कैद से निकलकर मिठाई के पिटारे में बाहर नहीं गए। यह सब गपोड़बाजी है। घनश्याम जी ने सही लिखा है किन्तु समाज में तो यह धारणा है कि वे पिटारे में ही कैद से बाहर निकले। साथ ही औरंगजेब इतना भोला भी नहीं था। शिवाजी स्वयं बुद्धिमान और हिम्मत वाले थे। शिवाजी के इस पिटारे के विषय के साथ समाज खड़ा हो गया। हमारा काम थोड़ा नाजुक है। हमें अपनी बात को समझा कर बताना पडेगा। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि पुराण कथाओं को रूपक मानकर इनकी व्याख्या करना गलत बात है। आप को इस का अधिकार किस ने दिया? इतिहास पढ़ने से आप क्या धर्माचार्य हो गए? इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही हमें आगे बढ़ना होगा। इस प्रकल्प की चिंता करने वाले हम जितने कार्यकर्ता लाएंगे उतना ही अच्छा होगा। क्योंकि वे अपने समय का नियोजन कर नियमित रूप से इस प्रकल्प की चिंता करेंगे।ऐसी संख्या और गुणवता के बल में वृद्धि करना और उसके बल पर रचना व्यवस्था, व्यापक संपर्क खडा करते हुए विषय वस्तु को तय करते हुए आगे बढ़ना है। चर्चाएं चल सकती है, बहुत सारी कल्पनाएं आ सकती है, यदि कल्पनाएं ही आती रहीं तो काम नहीं होगा।

कहीं से भी शुरू किया जाए तो कुछ न कुछ अपने हाथ लगेगा। जब गुणवत्ता वाला काम समाज के सामने आएगा तो समाज में स्थापित व्यवस्था भी हमारे साथ जुड़ जाएगी। आगे चलकर उसी गुणवत्ता के बल पर हमारा काम स्थापित होगा। जहां जहां हमारे लोग ऐसा काम कर रहे हैं उस दिशा में पूरे समाज का उस दिशा में इतिहास शोधन हो रहा है। हम जिस दिन यह काम कर लेंगे उस दिन सारी बातों में परिवर्तन होगा। तात्कालिक कारणों से खलबली मचती रहेगी, कुछ रंग भी बदलता रहेगा, समाज में तब तक परिवर्तन नहीं आएगा जब तक पूरा समाज यह समझने न लग जाए कि निर्देशित इतिहास नहीं घटित इतिहास देखना, बताना और पढ़ाना है। जो कुछ हुआ , ऐसा था। ऐसा

हुआ, यही हमको बताना है। हम लोगों को समाज को भी उस दिशा में ले जाना है। हमें यह भी नहीं सोचना होगा कि समाज को हिन्दुत्व की दिशा में ले जाना है। लोग जब सत्य का अनुसरण करेंगे तो वे हिन्दुत्व की ही दिशा में जाएंगे। उस की कोई दूसरी दिशा ही नहीं है, क्योंकि हिन्दुत्व सदैव सत्यता की ही दिशा में रहा है। हम केवल सत्य की ओर ले जाने की चेष्ठा करते है। हम घटित इतिहास बताएंगे न कि निर्देशित। इतना बड़ा महाभारत का युद्ध हुआ, व्यास जी का अपना एक भी शब्द नहीं जबकि महाभारत में उन्होंने अहम् भूमिका निभाई। पाण्डू के जन्म, धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि देने तक शान्ति पर्व में जब जब वह आते हैं, प्रत्यक्ष घटनाओं में बाकी उनके अपने शब्द कुछ नहीं है। कितना निर्विकार ढंग से उन्होंने लिखा है– दुर्योधन ने धर्मराज को गाली दी वह भी लिखी है, धर्मराज ने झूठ बोला वह भी लिखा है। महाभारत में दोनों की कमियां बताई है। पांडवों की भी कम कमियां नहीं बताई। कुन्ती कुंआरी अवस्था में कर्ण को जन्म देती है, उसे छिपाया नहीं गया है, उंगली उठाने वाले उठाएं लेकिन इतिहास ने सत्य को नहीं छिपाया। जहां जैसा घटित हुआ वैसा वर्णन किया। कहीं निर्देशित नहीं, जो जैसा हुआ वैसा बता दो। लोग खुद तय करेंगे कि सत्य क्या है। हम वह शक्तियां नहीं जो पूरी दुनिया को पागल मानती हैं और अपने आप को ही बलवान। जो है उसे लोंगें के सामने रख दो लोग स्वयं निर्णय करेंगे। ऐसा करते समय यह ध्यान रखना पड़ेगा कि लोग उसे पचा पाएं, उसकी चिन्ता करनी पड़गी। अब लोग राम की ऐतिहासिकता का प्रमाण पूछने लगे हैं। जब देश परतन्त्र था तो किसी ने भी राम की प्रामाणिकता का प्रश्न नहीं उठाया। तुलसीदास , कबीर व गुरुओं ने जो बताया उसे मान के चलें। जब १८५७ के बाद समाज को ऐसा लगा कि अब कुछ नहीं है, सब शांत है, अंग्रेज राज करने लगे। हम शान्ति की स्थिति में थे, हमने कुछ नहीं किया। इसलिए उन्हें इतिहास विकृत करने का समय मिल गया। अत: अब इतिहास ऐसा लिखना है कि समाज उसे पचा सके। समाज ने भी सत्यान्वेषी बन कर कितना भी कठोर सत्य आया उसे समाज ने पचाने का प्रयास किया। इस नीति को भी ध्यान में रखकर हमें आगे बढ़ना चाहिए।

श्वेतवाराह कल्प : इतिहास और विज्ञान

• वासुदेव पोद्दार

पृथ्वी के व्यवस्थित जैवपर्यावरण का प्रारम्भ १ अरब ९७ करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था, जो भारतीय पौराणिक इतिहास में श्वेतवाराह-कल्प के नाम से प्रसिद्ध है। इसके व्यापक विज्ञान को वाराह अवतार की कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस कथा में वर्तमान जैव-विकास के अनुकूल बनाने वाले वायुमण्डल का वैज्ञानिक इतिहास है, जिस का समुचित निर्माण – १,९७, २९, ४९, ११० से १, ९५, ५८, ८५, ११० वर्षों के मध्य हुआ, पुराणों की प्राचीनतम ऐतिहासिक परम्परा में-इतिहास का प्रारम्भ यहीं से होता है, जो श्वेतवाराह कल्प के नाम से प्रसिद्ध है, जिसका आधार है – ग्रह नक्षत्रों की स्थिति एवं गति। वराह शब्द का अर्थ है – वायु। श्रुति का कथन है – ***प्रजापतिर्वायुर्भूत्वा व्यचरत्***।[१] वायु के दो कार्य हैं – वस्तु को चारों ओर से घेर कर उसे संघात रूप से प्राप्त करना, इसे लक्ष्य में रखकर ब्राह्मण ग्रन्थों में वराह शब्द की व्युत्पत्ति की गई है – ***वृणोति च अह्नोति च वराह:***।[२] दूसरा अर्थ है प्राण। प्राण का प्रधान कार्य है जल को शुद्ध करते हुए उसमें जीवन-शक्ति संचार करना । इस कल्प के प्रारम्भ के पूर्व पृथ्वी पर विकृत वा असुर-प्राण का ही एक मात्र साम्राज्य था। वायु नामक वराह ने उस कीट-मेद को सुखा कर, जल को शुद्ध करते हुए पृथ्वी का कल्प-प्रवर्तन ही कर दिया। इसीलिए प्राण के द्वारा प्रवर्तित होने वाले कल्प का नाम श्वेत है, जो यहाँ शुद्धता का पर्यायवाची है। सूर्य की प्रचण्ड किरणों से तप्त होती हुई वायु ने पृथ्वी पर फैले हुए जल को बहुत कुछ सुखाकर शुद्ध बना दिया, जल के सूख जाने के फलस्वरूप पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग जल से बाहर निकल आया। सूर्य के प्रचण्ड ताप से वायु उत्तप्त हो गई, फलत: सूर्य का भी एक नाम वराह है। इस शुद्धीकरण और प्राणों की प्रतिष्ठा का कार्य व्यवस्थित रूप से संचालित होता है, इसीलिये प्रकृति के इस कल्प-प्रवर्तक घटना-चक्र को एक यज्ञ संस्था के अति व्यवस्थित क्रम के रूप में देखा समझा गया। अत: यज्ञ रूपक के माध्यम से उसकी व्याख्या की गई, इसीलिए उसका एक सर्वप्रसिद्ध नाम यज्ञ वराह है।

महावायु सम्पूर्ण विश्व का एक विराट् ब्रह्माण्डीय तत्त्व है। वह कई स्तरों पर कई प्रकार से इसके स्वरूप का निर्माण और संचालन करता है। इसे केन्द्र में रखकर उसके कार्य भेद के अनुसार अनेक नाम हैं, यथा – (१) विश्व को ब्रह्माण्डीय स्तर तक ले आने के कारण वह आदि वराह है, (२) उन ब्रह्माण्डों के अन्त: स्वरूप को संगठित करता है,

इसीलिए उसे यज्ञवराह कहते हैं, (३) सूर्यमण्डल द्वारा संरचनात्मक स्वरूप की दृष्टि से उसका तृतीय नाम श्वेतवराह है, (४) प्राणों की सत्ता का पार्थिव प्रवर्तन चन्द्रमा से सम्बद्ध है, इस प्रतिबद्धता से उसका अन्य नाम ब्रह्मवराह या ब्रह्मा है, (५) पृथ्वी का कल्प-प्रवर्तन इस वायुमण्डल के द्वारा होता है, अत: इस दृष्टि से वह एमूषवराह के नाम से भी प्रसिद्ध है। श्वेतवाराह कल्प का प्रवर्तन सूर्य के कारण होता है, इसलिए वर्तमान कल्प का नाम श्वेत वाराह कल्प है। प्रति मन्वन्तर के अन्त में प्रलय होता है, तदुपरान्त पुन: नये प्राणों का संचार, इसका विशेष सम्बन्ध एमूषवराह से है। विश्व स्वयं एक यज्ञ-चक्र है, इसीलिए इसके महान् प्रवर्तक वायुरूप महाविष्णु को ही यज्ञवराह कहा जाता है। दशावतार में परिगणित वराह—आदिवराह नहीं, वह एमूष है। एमूष वराह का अर्थ है, पृथ्वी पिण्ड को चारों ओर से दबाने वाला वायु। प्रलय के समय प्रचण्ड सूर्य ताप से वायुमण्डल का दबाव कम हो जाता है, मन्वन्तरीय प्रलय के पश्चात् वह ताप-शक्ति की शिथिलता से पुन: बढ़ जाता है— यही दबाव प्रधान वायुमण्डल एमूषवराह है। इसका पद विभाग है—आ+इम+उष। इन्द्र के अर्थ को लक्ष्य में रखकर इसे निरुक्त में — ***वराहमिन्द्र एमुषम्***[३] कहा गया है, ब्रह्मणस्पति भी वराह हैं — ***ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहै:***[४] अन्तरिक्ष स्थानीय देवता भी वराह हैं अत: वायु एवं रुद्र भी वराह हैं। बादल को भी निरुक्त में वराह कहा गया है — अत: ***वराहो मेघो भवति वराहार:।***[५] वैदिक संस्कृति का वराहतत्त्व परम व्यापक है।

भारतीय इतिहास का विषय— प्रवर्तन तो पाँच सहस्र वर्षों के काल प्रवाह से नहीं, 'हिरण्यगर्भ' — आदिअण्ड की संरचना के काल-बिन्दु से होता है। ऋषि-मनीषा ने इतिहास और विज्ञान दोनों को समान धरातल पर देखा और समझा है, वहां इन दोनों का प्रवर्तक बिन्दु एक है। अत: इतिहास वहां स्वयं एक विज्ञान है। इसलिए भारतीय परम्परा में उसकी विषय वस्तु कुछ सहस्त्र वर्षों का घटना प्रवाह मात्र नहीं, उसके काल-चक्र का प्रवर्तन सृष्टि के आरम्भ से होता है। भारतीय प्रज्ञा ने वर्तमान विज्ञान के बहुत आगे बढ़ कर विश्व के काल चक्र का स्पर्श किया है और उसके पुनरावर्तक-तत्त्व के स्वरूप को भलीभान्ति पहचाना है। कहा जा चुका है कि भारतीय चिन्तन दर्शन में काल और इतिहास दो नहीं, इन में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव है, काल बिम्ब है —इतिहास उसका प्रतिबिम्ब है। वहां जो काल है वही इतिहास है जो इतिहास है वही काल। इतिहास के प्रामाण्यशास्त्र का आधार उपपत्ति और परम्परा दोनों हैं। उपपत्ति के द्वारा हम उसके तथ्यात्मक स्वरूप की वैज्ञानिकता तक पहुंचते हैं। परम्परा उसके बाह्य एवं आभ्यन्तर आधारों का अन्वेषण करती हुई, स्वयं इतिहास के रूप में प्रस्तुत होती है। फलत: भारतीय इतिहास की तत्त्व दृष्टि और परम्परा दोनों का ही विषय प्रवर्तन विश्व की संरचना के मूल आधार से होता है, जहां यह सम्पूर्ण विश्व परिणमन की एक विस्तारधर्मा गतिशील इकाई है।

इतिहास पद अंग्रेजी के '*History*' शब्द का अनुवाद नहीं, न इनका अर्थ बोध की सीमाओं में परस्पर सम्बन्ध ही स्थापित हो पाता है। दोनों की अर्थतत्त्वमूलक आधार

भूमि *Semantics* भिन्न है। *'Hitory'* शब्द का अर्थ है *Inquiry* वहां सम्भावनामूलक अर्थ की प्रधानता है अत: हिस्ट्री सर्वत्र अपने अर्थ बोध की सीमा में एक सम्भावनामूलक इन्क्वारी मात्र है। विज्ञान से न जुड़ पाने के कारण उसका अर्थविस्तार सम्भावना की सीमाओं में ही संकुचित होकर रह गया है, सिद्धान्त की सीमाओं तक नहीं पहुंच पाया। इसके विपरीत इतिहास पद का अर्थ विनिश्चयार्थक है। इस पद में तीन पदों के शक्तिग्रह उसके अर्थ को स्पष्ट करते हैं — 'इति-ह-आस'। इति पद का अर्थ है— ऐसा व इस प्रकार, ह—निश्चित, आस—था, अत: सम्पूर्ण पद का अर्थ—' ऐसा निश्चित था' या 'ऐसा निश्चित हुआ था'। 'इति' पद यहां अतीत में वर्तमान घटना के प्रकार अर्थ में है, जो उसकी कालगत सम्पूर्णता का सूचक है, 'ह' पद का प्रयोग — विनिश्चय के अर्थ में, 'आस' — क्रिया भूतकाल में घटना के समापन के अर्थ को स्पष्ट करती है। अत: इतिहास पद को 'हिस्ट्री' शब्द का अनुवाद स्वीकार करना समुचित नहीं, इसे यहां समानार्थ में प्रयुक्त करना भारतीय इतिहास दृष्टि के साथ न्याय न होगा — भारतीय इतिहास दर्शन अति वैज्ञानिक है। सर्वप्रथम इस ग्रह के विगत दो अरब वर्षों के इतिहास को वहां युग विभाजन के साथ प्रस्तुत किया गया है। पश्चिम की परम्परा के द्वारा इस दिशा में किये गये अब तक के सारे प्रयास क्या अपूर्ण नहीं? यहां तक कि वैज्ञानिक उपलब्धियों पर आधारित विगत १०० वर्षों का अन्वेषण अपूर्ण ही नहीं वरन् अनेक मतभेद एवं विसंगतियों से ग्रस्त है। जहां तक मानवीय संस्कृति के इतिहास का प्रश्न है, वर्तमान हिस्ट्री की दृष्टि पांच छ: हजार वर्ष की काल अवधि तक ही पहुंच पाती है। ईसा से पूर्ववर्त्ती काल खण्ड में पहुंचकर यह और भी धुंधली और अस्पष्ट हो जाती है, ऐसी अवस्था में पृथ्वी के दो अरब वर्षों की इतिहस रचना की प्रक्रिया का महत्त्व ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से कम महत्त्वपूर्ण नहीं। विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में इस तरह का पुरुषार्थ कहीं भी विद्यमान नहीं है। पश्चिम की हिस्टोरिकल कही जानेवाली सभ्यता के पास १९ वीं शती के अन्त तक इस तरह की कोई कल्पना भी नहीं थी। वहां पृथ्वी के जन्म से अभी तक का सम्पूर्ण इतिहास छ: हजार वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। भारत की ऐतिहासिक संस्कृति में ईसा से पूर्व विश्व की सृजन तिथि १० अरब ६१ करोड़ वर्ष से भी बहुत अधिक पूर्व सुनिश्चित है।

बहुत संभव है कि दो अरब वर्षों के इतिहास में, जो श्वेतवाराह कल्प से आरम्भ होता है, बहुत सी घटनाएं छूट गई हैं, अनेक शृंखलाएं लुप्त हो गई हैं, कितनी ही परम्पराएं विस्मृत हो चुकी है, बहुत सारे तथ्य काल के अतल-तल में समाहित हो गये हैं। पुराणों ने जिस इतिहास को प्रस्तुत किया है, उसके अनेक सांकेतिक अर्थ और प्रतीक आज अस्पष्ट हैं। वहां अनेक तथ्य प्रतीक, रूपक, संकेतक, बिम्ब एवं विज्ञान कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं, जिनका मूल आज काल धर्म से ग्रस्त हो कर अस्पष्टार्थ और लुप्तार्थ की सीमाओं में प्रविष्ट हो चुका है। एतद् अतिरिक्त तथ्यों और प्रतीकों के अर्थ और सन्दर्भ, उनकी अभिव्यक्ति के प्रकार काल के विपुल प्रवाह में कितनी बार बदले होंगे, इसका अनुमान लगाना भी सहज नहीं है। उदाहरणत: 'श्वेतवाराह कल्प' शब्द ही रहस्यमय हो

उठा है। आकाशगंगा के तत्कालीन अपसर्पण से प्राप्त पृथ्वी की आदिम अवस्था के अनेक अर्थों को जहां यह शब्द स्पष्ट करता है, वहीं दूसरा अर्थ – 'यज्ञ-वराह' की दार्शनिक अवधारणा को रूपक की सीमा में ले आता है, तीसरा अर्थ भगवान वराह के सहज कथा प्रवाह की वैज्ञानिकता के साथ जुड़ा हुआ है।

दो अरब वर्षों के सुदीर्घ काल प्रवाह को पौराणिक परम्परा के माध्यम से प्रस्तुत करते समय बदलती हुई युग-परम्पराओं के सन्दर्भ में, तथ्य का अंश कितना और कैसे बदला होगा – यह भी विचारणीय है। फिर भी इस सुदीर्घ काल प्रवाह में कुछ सत्य और संकेत ऐसे हैं, जो इस सुविशाल ऐतिहासिक संस्कृति को '*Myth*' के मिथ्या गर्त में गिरने से रोक देते हैं। भारतीय परम्पराओं में मिथक की संरचना कभी नहीं हुई, यह संस्कृति मिथक-प्रधान नहीं, विज्ञान-प्रधान है। मिथक और रूपक में पर्याप्त अन्तर है। भारतीय वाङ्मय में संकेतार्थ को विपुल गाम्भीर्य और अर्थविस्तार प्रदान करने की दृष्टि से 'रूपक' और 'प्रतीक ' का आश्रय लिया गया, उन्हें विविध विज्ञान कथाओं के माध्यम से स्पष्ट किया गया, पर मिथक का वहां स्पर्श मात्र भी नहीं है। जब रूपक और प्रतीक अपने शक्ति ग्रह से भटक कर तत्त्ववाची संकेतार्थ के सन्दर्भ में अस्पष्ट और अनेक सन्देहार्थों से घिर जाते हैं, तब मिथक की संसृष्टि होती है। फलत: वह पूरी सभ्यता ही वैज्ञानिक चिन्तन से विच्युत और भ्रष्ट होती हुई मिथक के मायालोक में खो जाती है, उदाहरण के लिए ईसाई संस्कृति ने दो अति उल्लेखनीय वैज्ञानिक तथ्य भारतीय सभ्यता से प्राप्त किये थे– (१) प्रकृति के सप्त आवरण के अनन्तर विज्ञानघन सत्ता का अस्तित्व, (२) इस ग्रह की सृष्टि छ: मन्वन्तरीय दिन की संरचना है और सातवां दिन अभी चल रहा है। फलत: ईश्वर वहां सातवें आसमान पर पहुंच गया, छ: दिन का अर्थ तीन हजार वर्ष कर लिया गया है। दुष्परिणाम यह हुआ कि ईसाई धर्म विज्ञान विरोधी हो गया। यूनान की सभ्यता ने कभी शक्तिशाली मिथकों का निर्माण किया था, क्योंकि काल की संख्यात्मक अवधारणा एवं ऐतिहासिक दृष्टि के अत्यन्ताभाव के कारण यह अपने परम्परागत स्वरूप और उसके संकेतार्थों को ग्रहण करने में नितान्त असमर्थ थी। अत: तथ्यात्मक इतिहास और विज्ञान के स्थान पर मिथकों की सृष्टि वहां धारावाहिक रूप में होती रही। इसका ही दुष्परिणाम हुआ कि होमर द्वारा प्रस्तुत ट्रॉयकी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना मिथक मान ली गई, ऐतिहासिक होते हुए भी इसे पिछले दिनों तक अनैतिहासिक ही समझा गया। यहां तक कि किसी यूनानी गणितज्ञ को एक अरब की संख्या लिखने के लिए कहा जाए तो वह कितने ही दिन में उसे लिख पाएगा, वहीं एक भारतीय कुछ क्षणों में, इस के उपरान्त भी यूनानी संख्या की सत्यता अन्त तक संदिग्ध ही रहेगी। मिस्र की संस्कृति प्रतीक प्रधान थी, जिससे इस संस्कृति ने यूनान की तुलना में अधिक जीवन पाया। यूनान का इतिहास ईसा से दो सहस्र वर्ष पुराना है, पर यूनानी इतिहाकारों की दृष्टि में वह पूर्व सर्वदा कुछ सौ वर्षे का ही था। कैलेन्डर की जानकारी के अभाव में कोई भी सौ वर्ष का सन्धि पत्र (*Treaty*) वहां पांच दस वर्ष में समाप्त हो जाता है। वहां के सौ पचास वर्षों के प्रतिज्ञा-पत्रों पर कहीं कोई

तारीख तक नहीं। जो संस्कृति जितनी अधिक मिथकाश्रित होगी, वह उतनी ही अल्प स्थायी होगी। काल की अवधारणा का अभाव ही मिथक को जन्म देता है। यूनान के पास काल की धारणा का नितान्त अभाव था, इसीलिये मूर्ति कला इतनी विकसित होकर भी वहां मूर्तियां (*Statue*) अन्धी बनाई गई हैं। काल की चेतना अनन्त की चेतना है, पर वहां कोई मूर्ति भी ऊर्ध्वमुखी नहीं। अनन्त का रंग नीला ही कल्पित है, वहां की कला इस रंग के स्पर्श से भी शून्य है।

भारतवर्ष में मिथक के स्थान पर सत्–कथाएं लिखी गई हैं, आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में लिखा है – नाटक का विषय प्रख्यात एवं ऐतिहासिक होना चाहिये, यथा राजर्षिवंश का चरित्र, उदात्त नायक आदि–

प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्यातोदात्तनायकञ्चैव।
राजर्षिवंश्यचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम् ।।[६]

भारत की पौराणिक परम्परा विज्ञान सम्बन्धी विषयों के गम्भीरार्थ को स्पष्ट करते समय प्रतीक और रूपक का आश्रय लेती है। परम्परा के सुदीर्घ काल प्रवाह में कुछ सत्य और संकेत अब भी स्पष्टार्थ के बहुत निकट हैं, जिनके आधार पर सृष्टि के विकास का वैज्ञानिक इतिहास बड़ी प्रामाणिकता के साथ लिखा जा सकता है। पश्चिम की परम्परा के इतिहासकार जहां इन सत्यों को मिथक कहते हैं, वहीं वे तथ्य और सत्य आज आधुनिक विज्ञान से हाथ मिलाने के लिये प्रस्तुत हैं। यही नहीं वे भारतीय संस्कृति की इतिहास दृष्टि के वैज्ञानिक स्वरूप को सर्वतोभावेन भलीभांति उजागर करते हैं। यहां इन तथ्यों की संक्षिप्त तालिका को क्रमबद्ध प्रस्तुत कर देना अप्रसांगिक नहीं होगा, जो हमारी इतिहास चेतना और कालदृष्टि की प्रखरता और प्रामाणिकता का निगूढ़ संकेतक है। इसके मूल में एक विशिष्टार्थ की सत्ता है – 'इति ह आस '– ऐसा ही हुआ था। यह इतिहास दृष्टि राजवंशावली के विरुदगान वा तिथिक्रम तक ही सीमित नहीं, इसका महाविषय कालपुरुष की क्षर-क्रिया का कार्य-कारणरूप घटना प्रवाह है–

(१) विश्व के प्रथम सन्दोलनात्मक विश्वचक्र का प्रारम्भ–१५ नील, ५५ खरब, २१ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ११० वर्ष पूर्व

(२) विश्व का वर्तमान सन्दोलन चक्र– ६००१ ।

(३) आदिअण्ड की संरचना से विस्फोट तक सम्पूर्ण आयु– ३ लाख, ६० हजार, वर्ष पूर्व।

(४) वर्तमान सन्दोलनात्मक विश्व के आदि अण्ड का संरचना काल– १० अरब, ६१ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ११० वर्ष पूर्व

(५) आदि अण्ड हिरण्यगर्भ का महास्वन विस्फोट– १० अरब, ६१ करोड़, २५ लाख, ८९ हजार, ११० वर्ष पूर्व

(६) आकाश गंगा में तारों का प्रथम संरचना काल– ८ अरब, ४५ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ११० वर्ष पूर्व ।

(७) सूर्य का संरचना काल– ६ अरब, २९ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ११० वर्ष पूर्व।

(८) पृथ्वी की उत्पत्ति व संरचना काल– ४ अरब, १३ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ११० वर्ष पूर्व।

(९) जैव विकास का प्रथम काल– मधुकैटभ युग–४ अरब, ११ करोड़, ५८ लाख, ८५ हजार, ११० वर्ष पूर्व ।

(१०) पृथ्वी के प्रथम व्यवस्थित पर्यावरण का युग–श्वेत वाराह कल्प– १ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ११० वर्ष पूर्व।

(११) पृथ्वी पर प्रथम व्यवस्थित जैव विकास का युग–स्वायम्भुव मन्वन्तर– १ अरब, ९५ करोड़, ५८ लाख, ८५ हजार, ११० वर्ष पूर्व।

(१२) द्वितीय जैव युग–स्वारोचिष मन्वन्तर– १ अरब, ६६ करोड़, २७ लाख, ७३ हजार, ११० वर्ष पूर्व।

(१३) तृतीय जैव युग–उत्तम मन्वन्तर– १ अरब, ३५ करोड़, ४३ लाख, २५ हजार, ११० वर्ष पूर्व।

(१४) चतुर्थ जैव युग–तामस मन्वन्तर– १ अरब, ४ करोड़, ५८ लाख, ७७ हजार, ११० वर्ष पूर्व।

(१५) पंचम जैव युग–रैवत मन्वन्तर– ७३ करोड़, ७४ लाख, २९ हजार, ११० वर्षृ पूर्व।

(१६) षष्ठ जैव युग–चाक्षुष मन्वन्तर– ४२ करोड़, ८६ लाख, ८१ हजार, ११० वर्ष पूर्व।

(१७) वर्तमान सप्तम जैव युग–वैवस्वत मन्वन्तर– १२ करोड़, ५ लाख, ३३ हजार, ११० वर्ष पूर्व।

(१८) पृथ्वी की संरचना के संदर्भ में–महाद्वीपों के सम्प्रसरण का सिद्धान्त– प्रथम विकास में एक द्वीपा पृथ्वी– १अरब, ९७ करोड़ वर्ष पूर्व, द्वितीय विकास में चतुर्महाद्वीपा पृथ्वी १ अरब, २५ करोड़ वर्ष पूर्व, तृतीय विकास में सप्त महाद्वीपा पृथ्वी ७३ करोड़, ७४ लाख, वर्ष पूर्व।

(१९) पृथ्वी पर जैव विकास के काल विभाजन का आधार और स्वरूप– कल्प, मन्वन्तर और महायुग विभाजन।

(२०) पृथ्वी पर प्रथम मानवीय अस्तित्व का सूचना सन्दर्भ –१ अरब, ९५ करोड़ वर्ष पूर्व।

(२१) पृथ्वी पर वर्तमान नवीन मानव के प्रथम अस्तित्व की सूचना १२ करोड, वर्ष पूर्व।

(२२) वरुण प्रजातीय प्राणियों (जलचर)के विशेष युग की सूचना।

(२३) सरीसृप–प्रजातीय प्राणियों के विशेष युग की सूचना।

(२४) खेचर प्राणियों के विशेष युग की सूचना।

(२५) स्तनपायी प्राणियों के विशेष युग की सूचना।

(२६) दानवासुर वा डायनासोर युग की महत्त्वपूर्ण सूचना।

(२७) वानर संस्कृति के विकास की महत्त्वपूर्ण सूचना।

(२८) इतिहास के पुनरावर्तक सर्पिल—काल प्रवर्तनका सिद्धान्त।

(२९) पृथ्वी पर जैव विकास का सम्पूर्ण काल— ४ अरब, ३२ करोड़ वर्ष

(३०) १ अरब, ९७ करोड़, १२ लाख, वर्षों के इतिहास में ६ दीर्घ मन्वन्तर—प्रलय, ४४७ महायुग का खण्ड—प्रलय एवं १३४१ लघु युग—प्रलय।

(३१) पृथ्वी का वर्तमान हिम—प्रलय द्वापर युग के सन्धिकाल से प्रारम्भ १३ हजार, ६१२ वर्ष पूर्व।

(३२) इतिहास के काल चक्र का भविष्य दर्शन पृथ्वी का शेष जैव काल २ अरब, ३६ करोड़, ४१ लाख, १४ हज़ार, ८ सौ, ९० वर्ष ।

(३३) पृथ्वी की शेष आयु— ४ अरब, ५० करोड़, ७० लाख, ५० हजार, ८ सौ, ९० वर्ष।

(३४) सूर्य की शेष आयु— ६ अरब, ६६ करोड़, ७० लाख, ५० हजार, ८ सौ, ९० वर्ष।

भारतीय परम्परा में कल्प का कलमान निश्चित है, वेद ही इसका मूल है। अथर्वण का वचन है—

शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।[७]

अर्थात—सौ अयुत वर्षों के पूर्व २,३,४ की संख्या लिखने से कल्प का कालमान प्राप्त हो जाता है। अयुत दश हज़ार की संख्या है, अतः सौ अयुतका मान — १०,००,००० दश लाख वर्ष होता है। इस संख्या में सात शून्य हैं, इसके पूर्व क्रमशः २,३,४ का अंक लिख देने पर कल्प की संख्या — ४,३२, ००,००,००० वर्ष अर्थात् ४ अरब, ३२ करोड़, वर्ष प्राप्त होती है। इसी प्रकार यजुर्वेद में चारों युगों के नाम भी वहां कहे गए हैं—

.......................***कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्क सभास्थाणुम्....................***[८]

शुभ कार्य में किये जाने वाले संकल्प में हम बोलते हैं—

ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे.......[९]

यथार्थ यह है कि भारतीय धर्मशास्त्रों में कल्प—युगादि की कालगणना नक्षत्रगति के आधार पर की गई है । सूर्य सिद्धान्त के अनुसार कृतयुग के अन्त में पादमन्दोच्च को छोड़कर सभी ग्रहों का मध्यस्थान मेष में था —

अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।

विना तु पादमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यता मिताः।।[१०]

कल्पाब्द पश्चात् १, ७०, ६४, ००० वर्ष का कालमान पृथ्वी के पटल पर पर्वतादि के निर्माण का काल है। कल्पाब्द के प्रारम्भ काल – १, ९७, २९, ४९, ११० वर्ष के काल में से प्राकृत संरचनाकाल – १, ७०, ६४,००० को घटा देने पर – सृष्टि काल का प्रारम्भ – १, ९५, ५८, ८५, ११० वर्ष पूर्व है। दिन कालगत स्पष्टता की दृष्टि से – चैत्र शुक्ला प्रतिपदा रविवार प्रात: काल सूर्योदय के समय अश्विनी नक्षत्र मेष राशि के आदि में सब ग्रह थे। सृष्टि रचना के साथ कालगणना का प्रारम्भ हुआ। 'पञ्चसिद्धान्त' के अनुसार यह स्थिति इस प्रकार है –

अधिमासकोनरात्रग्रहदिननिथिदिवसमेषचन्द्रार्कः।

अयनत्वार्क्षगतिनिशाः समं प्रवृत्ता युगस्यादौ।।[११]

यहां शास्त्र का आशय है– कल्प, मन्वन्तर, युग के आदि में अधिमास, क्षयतिथि, ग्रह, सावनदिन, तिथि मेष राशि पर सूर्य, अयन, ऋतु, नक्षत्र, गति, निशा सब एक साथ सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकट हुए अर्थात् कलगणना का प्रारम्भ हुआ।

इसी कालगणना के कालचक्र में नक्षत्र गति के आधार पर कलियुग के प्रारम्भ का समय निश्चित हुआ है। भागवत के अनुसार – जिस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर विचरण कर रहे थे, उसी समय १२०० वर्ष (दिव्य वर्ष) युगमानवाले कलियुग का प्रारम्भ हुआ–

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि।

तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादिशाब्दशतात्मकः।।[१२]

इस विषय में गर्ग संहिता का भी यही अभिमत है द्वापर और कलियुग के सन्धिकाल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे–

कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते (सप्तर्षयः) पितृदैवतम् (मघा)[१३]

कलियुग के प्रारम्भ में मघानक्षत्र पर सप्तर्षियों की स्थिति का उल्लेख पौराणिक वाङ्मय में अनेक स्थलों पर होता है। यहां भागवत का उद्धरण इसलिए और भी महत्त्वपूर्ण है कि इसकी संरचना का काल महाभारत एवं अन्य पुराणों के पश्चात् होने के कारण यह मत पूर्ववर्ती सन्दर्भों के साथ अन्वित है।

योरोप के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद – *Bailly* ने गणित द्वारा जानने का प्रयत्न किया कि किस समय सातों ग्रह एक युति पर आए थे। उनके निष्कर्ष का उल्लेख *Count Bjornstjerna* के ग्रन्थ *Theogony of Hindus* में इस प्रकार उल्लिखित है –

According to the astronomical calculation of the Hindus, the present period of the world, Kaliyuga, commenced 3,102 years before the birth of Christ on the 20th February at 2 hours, 27 minutes and 30 seconds, the time being thus calculated to minutes and seconds. They say that a conjunction of planets then took place, and their tables show this conjunction. It was natural to say that a conjunction of the planets then took

place. The calculation of the Brahmins is so exactly confirmed by our own astronomical tables that nothing but actual observation could have given so correspondent a result.[१४]

इस कथन का संक्षिप्त आशय है– हिन्दू ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कलियुग का प्रारम्भ ईसा के जन्म से ३१०२ वर्ष पूर्व २० फरवरी की रात्रि में २ बजकर २७ मिनट और ३० सेकेण्ड पर हुआ था। इस समय नक्षत्रों का एक स्थान पर एकत्रीकरण हो जाता है। ब्राह्मणों का यह गणित हमारी गणना के अनुसार भी यथार्थ है। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार कलियुग का प्रारम्भ १७ फरवरी ३१०२ ईसा पूर्व है। भारतीय पञ्चांग परम्परा में सर्वमान्य मत ३१०२ वर्ष ईसा पूर्व है। विक्रम संवत् २०६६ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार दिनांक १७ मार्च, २००९ ईस्वी के दिन कलियुग ने अपने ५११० वर्ष पूर्ण कर ५१११ वर्ष में प्रवेश किया है।

भारतीय चिन्तन–दर्शन की परम्परा में इतिहास कला नहीं, वह विज्ञान और शास्त्र है। इसीलिए भारतीय इतिहास दृष्टि का विषय प्रवर्तन हिरण्यगर्भ की संरचना से होता है, इस इतिहास शास्त्र की सामग्री अत्यन्त प्राचीन है, अतः इसका सर्व प्रसिद्ध नाम पुराण है – ***यस्मात् पुरा ह्यभूच्चैतत् पुराणं तेन तत् स्मृतम्***[१५]अर्थात् – प्राचीन काल में ऐसा हुआ था, इस अर्थ में पुराण है। पुराण वा प्राचीन इतिहास के पांच लक्षण स्थिर किये हैं – अर्थात् सम्पूर्ण विवेच्य सामग्री को पांच भागों में विभक्त कर दिया गया – (१) सर्ग, (२) प्रतिसर्ग, (३) मन्वन्तर, (४) वंश, और (५) वंशानुचरित –

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।[१६]

यह श्लोक प्रायः सभी पुराणों में किंचित परिवर्तन से और कहीं यथावत् प्राप्त होता है। इनमें प्रथम तीन का सम्बन्ध तो सीधे विज्ञान से है, अन्तिम दो प्रचलित अर्थ में इतिहास प्रधान है। 'सर्ग' का सम्बन्ध सृष्टि के क्रमिक संरचनात्मक विकास और इतिहास से है। वही प्रतिसर्ग का सम्बन्ध विश्व के प्रलय क्रम से है। सृष्टि और प्रलय के संरचनात्मक और ध्वंसात्मक स्वरूप को समझे बिना विश्व के विकास और इतिहास के गतिशास्त्र को समझना असम्भव है, क्योंकि संरचनात्मक विकास के प्रत्येक बिन्दु पर सृष्टि और विनाश का चक्र क्रम धारावाहिक रूप से गतिशील है। यदि किसी संस्कृति में विज्ञान अति समुन्नत दशा में हो तो उसका इतिहास कहीं भी विज्ञान से पृथक् नहीं रह पाता, वह विज्ञान रूप होकर ही सृष्टि के काल–चक्र को उसके प्रथम प्रारम्भ से ही अपना विवेच्य विषय बना लेता है। यही सत्य सर्वत्र भारत वर्ष के पौराणिक इतिहास चिन्तन के साथ रहा है। जहां तक मत पार्थक्य का प्रश्न है, वह तो विशेषज्ञता की सीमा में प्राप्त होने वाला सिद्धान्त चिन्तन है, जो अपनी प्रशस्तता और विपुलता के साथ सर्वत्र ग्राह्य है।

पौराणिक इतिहास का तीसरा लक्षणभूत विषय मन्वन्तर है –जिसका सीधा सम्बन्ध पृथ्वी के ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों के युगात्मक इतिहास से है। इस ग्रह के सम्पूर्ण

इतिहास को वहां १४ भागों में बांटकर कुछ वैज्ञानिक संकेतों के साथ समझा समझाया गया है, इसमें पृथ्वी के भावी इतिहास का भविष्य दर्शन भी समाहित है, जिसकी काल अवधि अभी दो अरब वर्षों से भी बहुत अधिक शेष है। चौथे लक्षण 'वंश' का सम्बन्ध मन्वन्तर में होने वाले विकास के बीज से है। इस बीज की विकास यात्रा का स्वरूप और इतिहास क्या है? यह बीज किस प्रकार काल के दीर्घ प्रवाह में संक्रान्त होता हुआ जैव विकास के क्रम में आगे चलकर फलता फूलता और विकसित होता है। यही वंश तत्त्व का प्रधान विवेच्य विषय है। पांचवां लक्षण वंशानुचरित–इस बीज के काल क्रमानुगत वंशरूप विस्तार का इतिहास है। इस लक्षण में प्रधान रूप से यही विचार किया गया है कि किस मन्वन्तर के किस महायुग में मानवीय विकास प्रधान रूप से किस प्रकार हुआ था, यही वंशानुचरित का इतिहास प्रधान विषय है। काल के दीर्घ प्रवाह में जैव विकास का स्वरूप अनेक बार बदलता है, अनेक बार अवरुद्ध हो जाता है। पुनः उसका नया प्रारम्भ और विकास कालक्रम से होता रहता है। इतिहास तत्त्व का दिग्दर्शन वंश और वंशानुचरित का महाविषय है। अतः ये दोनों विषय शुद्ध रूप में विज्ञान न होते हुए भी उससे अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं। विज्ञान–चिन्तन के अभाव में दो अरब वर्षों के इतिहास में वंश और वंशानुचरित का अन्वेषण ही सम्भव नहीं है।

काल अक्षर–तत्त्व की क्षर–क्रिया है, इतिहास इसका क्षर–कर्म। कालतत्त्व के इस क्षर कर्म को खोजते हुए भारतीय दर्शन और विज्ञान के आचार्य काल के उस मान और मेय तक पहुंच चुके थे–जहां नीहारिकाएं महापिण्डों के रूप में परिणत होती हैं। यह सम्पूर्ण भूत–भवत्–भविष्यत् के रूप में उपस्थित ॐ कार स्वरूप अक्षर–तत्त्व का ही उप–व्याख्यान है–***ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।***[१७] इस अनन्त विश्व की संरचना, इसके भुवकोशों का संख्यातीत विस्तार, आकाशगंगा का सीमातीत उपबृंहण, अनन्त ब्रह्माण्डपिण्डों का समुद्भव, मानव सहित इनका विपुल प्रजातीय विस्तार, इतिहास और विकास, सभी कुछ इस काल–द्रव्य में समाहित है। विश्व का मूलतत्त्व सनातन है, इसका धर्म सनातन है, धर्मरूप परिणाम सनातन है। सनातनधर्म का मूल भी सनातन ही होता है–***सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत् सनातनम्।***[१८] विश्व परम–सनातन–सत्ता की सनातन कालयात्रा है, काल के महाछन्द पर पुनः पुनः विश्व रूप सत्ता का पुनरावर्त होता रहता है, और इससे ही इतिहस की चक्राकार–सर्पिल गतिका प्रवर्तन। सामश्रुति का यही सनातन अर्थ है–वह परम पुरातन नूतन बनने की कामना करता है, उसके लिए सभी मार्गों का प्रवर्तन होता है, तत्त्वतः वह एक है –

स पूर्व्यो नूतनं आजिगीषन्।
तं वर्तनीर् अनु वावृत एक इत्।।[१९]

उपर्युक्त बहुशः तथ्य स्वयं में प्रमाण भारतीय वाङ्मय ने मिथक की सृष्टि नहीं की, यह विज्ञान दृष्टि–कालचिन्तन–इतिहासबोध, यथार्थ पर आधारित है। भारतवर्ष के

महर्षियों ने इतिहास पुरुष के महान् विग्रह की पूजा सर्वदा महाकाल के मन्दिर में की है। उसके स्वरूप की उद्‌भावना सृष्टि—संवत् अर्थात् श्वेतवाराहकल्प से होती है, इसीलिए इतिहासपुरुष वराहमुख है। सम्पूर्ण विश्व का काल—प्रवाह उसका विवेच्य विषय है, अत: वह महोदर है, पृथ्वी का रंगरूप ही उसकी वर्ण छटा है, इसीलिए उसे कुशाभास कहा गया है। उसके एक हाथ में अक्ष—सूत्र हैं, क्योंकि कालका संख्यात्मक निर्देश वहां यथार्थ गणना के साथ प्रस्तुत है। ज्ञानामृतका दान ही इतिहास का पावन उद्देश्य है, इसीलिए उसके द्वितीय कर में सुधाघट विद्यमान है। इतिहास पुरुष का यह अनुपम विग्रह कमल के आभूषणों से विभूषित है—यहां कमल विकास का प्रतीक है। भारतीय शिल्प शास्त्र में इतिहास पुरुष का यही महान् लाक्षणिक विग्रह है, जो मिथक नहीं, एक प्रतीकात्मक यथार्थ है।

इतिहासः कुशाभासः सूकारास्यो महोदरः।
अक्षसूत्रं घटं बिभ्रत्पंकजाभरणान्वितः।।

सन्दर्भ :

१. तैत्तिरीय संहिता — १२-७-५
२. पदनिरुक्ति
३. ऋग्वेद— ८-७७-१०
४. ऋग्वेद— १०-६७-७
५. निरुक्त — आचार्य श्रीयास्कमुनिकृत — ५-१-४
६. नाट्यशास्त्र— श्रीभरतमुनिकृत — २०-१०
७. अथर्ववेद — ८-२-२१
८. यजुर्वेद— ३०—१८
९. चतुर्वर्ग चिन्तामणि—आचार्य श्रीहेमाद्रिकृत संकल्प
१०. सूर्य सिद्धान्त— अचार्य श्रीभास्कराचार्यकृत—१—५७
११. पंचसिद्धान्त
१२. भागवत पुराण — १२—२—३१
१३. गर्ग संहिता
१४. *Theogony of Hindus by Count Bjornstjerna P.P. 32*
१५. ब्रह्माण्ड पुराण— १-१-१७३
१६. अभिधानचिन्तामणि
१७. माण्डूक्योपनिषद् — १-१
१८. महाभारत—आश्वमेधिकपर्व — ९१—३४
१९. सामवेद— १—४—३१३

४०, सोमनाथ, लाहिरी सरणी
(टालीगंज) सर्कुलर रोड़),
न्यु अलीपुर, कोलकत्ता —७०००५३

अवबोधन ✍

तूफान-ए-नूह की वास्तविकता

उर्दू मूल : ठाकुर नगीना राम परमार

• अनुवादक : ठा० राम सिंह

यहूदियों मुसलमानों और ईसाईयों की मज़हबी पुस्तकों में तूफान–ए–नूह का बड़े शक्तिशाली शब्दों में उल्लेख किया गया है। परंतु विश्व के अन्य कई देशों के साहित्य में इसका उल्लेख नहीं है। उदाहरण के लिए जैसे अबु उलकतालिम फिरिश्ता अपने इतिहास में लिखता है कि ''मानिदे किनार खता ओ खुत्न व चीन किनारे रिन्डे नीज़ में गोयिन्द कि तूफान–ए–नूह बहलाकत ना नरसीद''। पुराने साहित्य में इसका उल्लेख न होने के कारण दूसरे राष्ट्रों के विद्वान तूफान–ए–नूह की घटना के बारे में बड़ी आपत्तियां करते हैं और ईसाई, मुसलमान और मुरिदी उनका उत्तर नहीं दे पाते हैं। परंतु इस शस्त्र को संबन्धित सियास्तों ने कभी प्रयोग नहीं किया। हिन्दुओं के साहित्य में इस पर काफी प्रकाश डाला गया है। वास्तविकता यह है कि हज़रत नूह का तूफान वैश्विक नहीं था। अपितु स्थानीय था। और यह केवल अरब़ रोम और यूनान में ही आया था जो यहूदियों, ईसाईयों और मुसलमानों के मतों की जन्मभूमियां हैं। यही कारण है कि उन के मतों के ग्रन्थों में तो इसका उल्लेख वर्णन बड़े शक्तिशाली शब्दों में है, परंतु बाकी देशों के लोग इससे अपरिचित हैं।

पुराणों के अध्ययन से न केवल तूफान–ए–नूह की वास्तविकता पुष्ट हो जाती है अपितु, इसका शास्त्र पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है। साथ ही यह भी मालूम हो जाता है कि उस तूफान से किस किस देश में कितनी हानि हुई ओर इसका सही समय का भी पता लग जाता है।

विष्ण पुराण के पांचवें अंश के ३७ वें अध्याय में लिखा है कि जब श्रीकृष्ण जी की आयु १२५वर्ष की हुई तो वह उस समय पृथ्वी और अंतरिक्ष में होने वाले बहुत से उत्पातों का अध्ययन करके इस निर्णय पर पहुँचे कि अब वह समय आ गया है जब द्वारिकापुरी जैसा सुन्दरनगर नष्ट हो जायेगा और यदुवंश का नाश होगा। अत: उन्होंने यदुवंश के शूरवीरों को अपने पास बुलाया और कहा पृथ्वी और आकाश में बहुत से इस प्रकार के उत्पात दिखाई दे रहे हैं जिनका परिणाम जनता के लिये अत्यंत अशुभ और भयानक होगा। इन उत्पातों की शान्ति के लिये तुम सब प्रभास तीर्थ को चलो। इस कारण समस्त यदुवंशी तीर्थयात्रा की तैयारियां करने लगे परंतु उद्धव ने अपने मन में विचार

किया कि तीर्थयात्रा करने से तो उत्पातों की शान्ति तो क्या होगी? श्रीकृष्ण यदुवंशियों को इनके विनाश के लिये तीर्थ पर ले जा रहे हैं। अत: उसने श्री कृष्ण से निवेदन किया कि क्या यदुवंशियों के नाश का समय निकट आ गया है? तो मेरे लिये आपका क्या आदेश है? तो श्री कृष्ण जी ने कहा कि यदुवंशियों में केवल तुम्हीं हो जिसे बचना है। तुम्हारा विचार पूर्णत: सत्य है। अब तुम गन्धमादन पर्वत पर चले जाओ और वहां अपने जीवन के बाद के दिन व्यतीत करो। यदुवंशियों पर आने वाले विनाश के बाद हम भी अपने इस नश्वर शरीर को छोड़ देंगे। हमारे बाद द्वारिका नगर तूफान के कारण सागर में डूब जायेगी। उद्धव श्री कृष्ण को प्रणाम करके नारायण के आश्रम की ओर रवाना हो गया। यदुवंशी प्रभास तीर्थ पर जाकर आपस में लड़ झगड़ कर सब के सब समाप्त हो गये।

श्रीकृष्ण ने वाहक से कहा तुम द्वारिका को जाओ, वसुदेव और उग्रसेन को सूचना दो और फिर हस्तिनापुर जाकर अर्जुन को ले आना ताकि वे महिलाओं और बच्चों को यहां से ले जाये क्योंकि द्वारिका नगर सागर में डूब कर नष्ट हो जायेगा। तुम्हारे जाने के बाद हम भी इस नश्वर शरीर को छोड़ देंगे।

वाहक वहाँ से चला और तुरंत द्वारिका पहुँचा और राजा उग्रसेन को सूचना देकर हस्तिनापुर की ओर रवाना हो गया। महाराजा युधिष्ठर के दरबार में पहुंच कर श्री कृष्ण कीग सूचना दी कि अर्जुन को श्री कृष्ण ने बुलाया है। युधिष्ठिर ने बुलाने का कारण पूछा तो संदेशवाहक चुप रहा। उसके मुख पर उदासी छाई हुई थी। युधिष्ठिर ने उसकी यह स्थिति देखकर कहा कि तुम्हारे मुख से अच्छे लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। कहो! वहां सब ठीक तो है? श्री कृष्ण जी और बलराम जी अच्छे हैं? और सभी यदुवंशी सकुशल हैं? यह सुन कर वाहक का मन भर आया। उसकी वाणी रूक गयी। आँखों से अश्रुओं की धार बह निकली और वह एक भी शब्द मुंह से बोल न सका।

महाराजा युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि हे वीर! इन दो मासों में ऋतु के विपरीत बहुत आंधियां आयीं और इतने झक्कड़ चले कि विश्व आश्चर्य चकित हो गया। दिन के प्रकाश के समय चांद के चारों ओर एक चक्र दिखाई दिया। सूर्य के चारों ओर काले काले गोले दिखाई देते रहे। इस प्रकार की घटनाओं को देख कर हमारे मन में भिन्न भिन्न प्रकार के विचार आ रहे हैं। हमारा माथा ठनक रहा है कि देखें कि प्रकृति से क्या प्रकट होता है। तुम अति शीघ्र द्वारिका पहुंचो। श्री कृष्ण जी ने बिना उद्देश्य नहीं बुलाया है। वाहक का मौन भी बहुत कुछ अर्थ रखता है।

अर्जुन द्वारिका पहुंचा तो सारा चित्र ही बदला हुआ था। आवश्यक कामों से निवृत्त होकर दरबार में गया। सागर की अस्वाभाविक स्थिति और मौसम का विपरीत व्यवहार देखकर अर्जुन ने दरबार के लोगों को कहा आज से सातवें दिन सागर में तूफान आयेगा और द्वारिका नगर नष्ट हो जायेगा। इस समाचार को नगर में पहुंचा दो ताकि सब लोग अपना अपना सामान उठाकर ले आएं। नगर खाली कर दें और किसी की हानि न हो। अत: शहर में मुनादी करवा दी गयी। इस समाचार के मिलते ही हाहाकार मच गया।

सारे नागरिक अपना—अपना सामान उठाने लगे।

सातवें दिन तूफान आया। बड़े—बड़े भवन जो बड़े विशेषज्ञ अभियंताओं ने बनाये थे और जिन पर करोड़ों रुपये व्यय हुये थे देखते ही देखते सागर के उदर में समा गये। अर्जुन श्री कृष्ण के परिवारजनों को लेकर हस्तिनापुर पहुंचा। महाराजा युधिष्ठिर को समाचार दिया। उन्होंने उसी समय आदेश दिया कि हस्तिनापुर में परीक्षित का और मथुरा में श्री कृष्ण के पड़पोते बज्रनाभ का राज्याभिषेक किया जाये और हम भी राज्य त्याग कर देवलोक को जायेंगे। जब इस दुनियां में श्री कृष्ण ही नहीं तो हमें राज्य और दुनियां से क्या प्रयोजन? अत: दोनों कुमारों को सिंहासनारूढ़ कर शासन उनको सौंप कर चारों भाईयों और द्रौपदी को साथ लेकर उत्तर की ओर चल दिये।

अब पाठक ध्यान कर सकते हैं कि तूफान—ए—नूह की घटना का इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है । जेम्ज़ टाड राजस्थान के इतिहासकार मनु जी के प्रलय को ही तूफान—ए—नूह कहने की भूल कर बैठे। मनु और नूह के युग में करोडों वर्षों का अंतर है। वर्तमान काल के विद्वान इतिहास के उन पुराने ग्रन्थों का अध्ययन कहाँ करते हैं जो उस समय में प्रकाशित हुए। यह बात महाभारत और विष्णु पुराण के साक्ष्यों से स्पष्ट हो जाती है कि यह तूफान आम दुनिया में नहीं आया। अपितु स्थानीय था। संस्कृत साहित्य में द्वारिका के सागर में गर्क होने का इतिहास तो मिलता है, परंतु अन्य एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि जिन से यह बात सिद्ध हो सके कि भारत वर्ष के किसी और भाग पर भी तूफान आया हो।

विचार करने पर यह पता लग जाता है कि यह तूफान कुलजय तथा अरब सागर के संगम पर आया था। अत: इन दोनों सागरों के तटों के नगरों को हानि पहुंची होगी। अरब की सारी भूमि पानी में डूब गयी होगी क्योंकि इस देश की वर्तमान अवस्था का अध्ययन करने से यह तथ्य सिद्ध हो जाता है। इसका प्रमाण यह है कि इसकी भूमि रेतली है और यह जलप्लावन के कारण हुआ। इसका प्रमाण यह है कि अरब प्राय: बंजर और मानव आबादी के बिना है। सागर तट पर होने के कारण इसकी भूमि उर्वरा होनी चाहिये थी। तीसरा कारण है कि अरब के आस पास के देशों की अपेक्षा अरब की आबादी कम है और वहां पर खानाबदोश लोग आबाद हैं। हो सकता है तूफान का गम काफी समय तक लोगों के मनों में रहा होगा और इस कारण किसी को भी वहां जम कर बसने का साहस नहीं हुआ होगा। चौथा कारण है कि अरब में ५००० वर्ष से पुराना कोई नगर नहीं है। अब हम यह देखना चाहते है। कि तूफान—ए—नूह की ठीक तिथि क्या है?

१. कुछ विद्वानों का विचार है कि नूह का तूफान ईसा मसीह से ६६०४ वर्ष पहले आया।
२. मुंतखब त्वारीख का लेखक लिखता है कि यह तूफान ससिर से २११४ वर्ष पूर्व आया।
३. यहूदी कहते हैं कि तूफान—ए—नूह २३४८ वर्ष पूर्व आया।

४.	अनेक कहते हैं कि ३००४ वर्ष ईसा पूर्व।

५.	लगाते फिरोज़ी के लेखक लिखते है कि तूफान–ए–नूह ईसा से ३३३८ वर्ष पूर्व आया। परंतु, यह सारे विवरण मिथ्या, काल्पनिक और असत्य सिद्धांतों पर आधारित हैं। ज्योतिष शास्त्र के साक्ष्यों से हम प्रमाणित कर सकते हैं कि महाराजा युधिष्ठिर मसीह से ३१७६ वर्ष पूर्व सिंहासनारुढ़ हुये। उन्होंने ३६ साल ८ मास और २ दिन शासन किया। अर्जुन से जवानी यदुवंशियों के विनाश का हाल और द्वारिका नगर के सागर में डूब जाने का हाल सुनते हैं। इस समाचार को सुनकर युधिष्ठर ने राज्य त्याग दिया। इसके एक मास पहले तूफान आया। इस कारण तूफान–ए–नूह की सही तारीख ३१३९ वर्ष और ४ मास पहले करार दी जा सकती है। इसमें दिनों का अंतर तो हो सकता है, मासों और सालों का अंतर नहीं है। महाराजा युधिष्ठर ने २५ पोह को राज्य त्याग दिया। इस कारण कार्तिक और मंघर इन दो मासों में तूफान आया।

राज्य की मध्यमान अवधि

यूरोप के इतिहासकार जब भारतवर्ष की एक ऐतिहासिक घटनाओं का अनुसंधान करने बैठते हैं तो प्राय: कल्पना से तीस चालीस वर्ष प्रति पीढ़ी का मध्यमान अंदाज़ा करके हर वंश के राज्य के काल का अंदाज़ा लगा लेते हैं। यह पद्धति केवल आर्यावर्त के ही सम्बन्ध में प्रयोग में लाते हैं। अपने देश की तारीख और वंशावलियों में इस पद्धति का प्रयोग नहीं करते हैं। अस्तु इन्हीं की पद्धति के अनुसार हम युधिष्ठिर के संवत् के संबन्ध में विचार करना चाहते हैं।

१) ऊपर की पंक्तियों में कहा गया है कि राजा युधिष्ठर का राज्यारोहण ईसा से ३१७६ वर्ष पहले हुआ और दिल्ली का अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान सन् ११९२ में पदच्युत हुआ। युधिष्ठिर से पृथ्वीराज तक १३८ राजाओं ने ३१७६+ ११९२=४३६८ वर्ष राज्य किया। इसलिये एक राजा का राज्य काल ३१ साल ७ मास और २४ दिन आता है।

२) युधिष्ठिर के समकालीन श्री कृष्ण जी से लेकर महाराजा वैरी सिंह तक यदुवंश की १२७ पीढ़ियों ने ३१७६+१९२०=५०९६ वर्ष शासन किया और प्रत्येक पीढ़ी का मध्यमान ४० वर्ष, १ मास १९दिन आता है।

३) महाराजा महाकोरम नरोर के शासक युधिष्ठिर के समकालीन से लेकर महाराजा सवाई माधो सिंह (जयपुर, १९२०) तक कुशवाहों की १८१ पीढ़ियों ने ५०७६ वर्ष राज्य किया। एक शासक का राज्यकाल २८ वर्ष और १५ दिन आता है।

४) महाराजा बिन्दु (उज्जैन) युधिष्ठिर के समकालीन से लेकर राव कृष्ण सिंह (सन् १९२०) वर्तमान शासक विजोलियां तक परमार वंश की १६३ पीढ़ियों ने ५०९६ वर्ष राज्य किया। एक राजा का मध्यमान काल २१ साल, ३ मास २ दिन आता है।

५) महाराजा वासुदेव पौंडरिक युधिष्ठिर के समकालीन से लेकर महराजा

रघुवीर सिंह वर्तमान शासक बूंदी के चौहानों की १६३ पीढ़ियों ने ५०९६ वर्ष राज्य किया। प्रत्येक राजा का मध्यमान ३१ वर्ष, ३ मास, ३ दिन आता है।

६) महाराजा बालगोन्दबू कश्मीर युधिष्ठर के समकालीन से लेकर अंतिम हिन्दू राजा सहदेव तक जो सन् १३४१ में पदच्युत हुआ कश्मीर में १६६ राजाओं ने ४५१७ वर्ष राज्य किया। प्रत्येक राजा का मध्यमान २७ वर्ष २ मास और १६ दिन आता है।

७) महाराजा सुशर्मा त्रिगर्त युधिष्ठिर के समकालीन से लेकर वर्तमान राजा कर्मचन्द (सन् १९२०) तक राजपूतों की २५२ पीढ़ियों ने ५०९६ वर्ष राज्य किया। प्रत्येक राजा का मध्यमान २० वर्ष, २ मास २० दिन आता है।

८) महाराजा पूषाकर्ण के राजवंश के संस्थापक से लेकर महाराजा गुलाब सिंह तक चम्मवाल राजपूतों की १२७ पीढ़ियों ने ५०९६ वर्ष राज्य किया। एक पीढ़ी का मध्यमान ४० वर्ष १ मास और १५ दिन आता है।

उपर्युक्त साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि महाराजा युधिष्ठिर के राज्यारोहण से लेकर वर्तमान युग तक राजपूत राजाओं का क्रमबद्ध मध्यमान अधिक से अधिक ४० वर्ष १ मास और १५ दिन आता है। कर्नल टाड की राय में ४४ वर्ष का मध्यमान भी संभव है। इस कारण युधिष्ठिर संवत् का प्रारंभ ईसा से ३१७६ साल पहले निश्चित करने में किसी प्रकार की आपत्ति का स्थान नहीं है।

भारतवर्ष मेरा शरीर है। कन्याकुमारी मेरा पैर और हिमालय मेरा सिर है। कोरोमण्डल मेरी बाईं और मालाबार दाहिनी टांग है। मैं सम्पूर्ण समूचा भारतवर्ष हूँ। पूर्व और पश्चिम हिमालय मेरी भुजाएँ हैं, जिन्हें मैंने मानव समाज को आलिंगन करने हेतु फैला रखा है। जब मैं चलता हूँ तो लगता है भारतवर्ष चल रहा है। जब मैं श्वास लेता हूँ तो भारतवर्ष ही श्वास लेता है।

स्वामी रामतीर्थ

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में हिन्दू और बौद्ध

● डॉ० शारदा सिन्हा

बेलांडई गोपाल ऐय्यर के शब्दों में यह कहना कि गौतम बुद्ध के इतिहास को छोड़कर इतिहास में ऐसी कोई पुस्तक नहीं लिखी गई जिससे यह निष्कर्ष निकाला जाता कि वर्तमान सभ्यता में विरासत का क्या अवदान है[१]। इसमें यह भी जोड़ा जा सकता है कि वर्तमानकालिक समाज में तांत्रिक संस्कृति का प्रभाव रहते हुए भी इसके कतिपय अंशों को विकृत रूप में पेश किया गया है[२]। जो समीचीन नहीं है। समस्त इतिहास में जिस हिन्दू की बात कही गई है वे कौन हैं? यह स्पष्ट नहीं है। भले ही कतिपय इतिहास में ब्राह्मण कह कर हिन्दुओं को परिभाषित किया गया है।[३] प्रस्तुत निबंध में भारत वर्ष में उत्पन्न हिन्दू उसे कहेंगे जिनकी संस्कृति में वेद और स्मृति के अतिरिक्त आगम के दर्शन आदि भी सन्निहित है। बौद्ध की संज्ञा हम उसे देंगे जिनकी धरोहर भगवान बुद्ध है।

इतिहास की पुस्तकों में मुख्यत: भगवान बुद्ध को एक धर्म–सुधारक, समाज सुधारक तथा वेद या ब्राह्मण धर्म के विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो इतिहास की दृष्टि से तथ्यात्मक नहीं कहा जा सकता। भगवान बुद्ध एक क्षत्रिय राजकुमार थे जिनका नाम सिद्धार्थ था। तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप राजकुमार का जीवन वैभव और विलासिता पूर्ण था। इस वैभव और विलासितापूर्ण जीवन में उन्होंने जीवन के कष्टमय अंशों को देखा। रोगी, वृद्ध तथा प्राणी को मृत्युशय्या पर देखकर उन्हें विलासितापूर्ण जीवन से विराग हो गया। वैदिक धर्म और शिक्षा के द्वारा उस जिज्ञासा की शान्ति नहीं हुई। अत: वे परिवार और समाज से परित्याग कर जिज्ञासा के शमन हेतु वन में चले गए और आत्म विश्लेषण से अपनी जिज्ञासाओं का समाधान कर लिया जिसे आगे चलकर उन्होंने ***'अपो दीपो भव:'*** कहा। मनुष्य के अन्दर होने वाले भौतिक व दैवी कष्टों से छुटकारे के लिए उन्होंने एक प्रकार की तपस्या में जाने को कहा जिसमें परिवार या समाज से अलग रह कर सन्यासियों जैसा जीवन बिताना था। स्वयं राजपाठ ठुकराकर भिक्षु का रूप धारण किया और लोगों के बीच चमत्कारिक गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हुए। तत्कालीन स्मृतियों के कठोर नियमों और धर्म से उब कर आए समविचारक हुए लोगों की एक संस्था बन गई जो बौद्ध कहलाई। उक्त स्मृतियों के कठोर नयमों को न माननेवाले कुछ और लोग भी थे जिनको ऋषियों द्वारा प्रणीत आगम शास्त्र मिला और कालान्तर में वे तांत्रिक कहलाये।

बुद्ध के उपदेशों का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा और महाराजा अशोक के राज्य के समय बौद्ध मत को राजकीय मान्यता मिली। सनातन हिन्दू मान्यताएं भी इस बीच सुदृढ़ हुई। सनातन हिन्दू और बौद्ध में मूल भिन्नता यह रही कि सनातन परम्परा में वेद प्रमाण रहे लेकिन बौद्ध इसे नहीं स्वीकार करते और संस्कृत भाषा के स्थान पर बौद्ध ने पाली भाषा को महत्त्व दिया। इसे लेखकों ने हिन्दू और बौद्धों के बीच अन्तर्कलह के रूप में निरूपित किया। वास्तव में यह कोई मत—मतान्तरों की अस्वाभाविक स्थिति नहीं थी। ऐतिहासिक सत्य है कि ऐसी मत—भिन्नता से बौद्धों के बीच भी विभाजन हुआ। एक महायान बौद्धों की शाखा का सृजन हुआ जिसने अपने सारे ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे। इतिहासकार पशुबलि और कर्मकाण्ड को जो मतभेद का कारण मानते हैं वह समीचीन नहीं है। क्योंकि स्मृतियों में सामिष को गर्हित माना गया है तथा वैदिक कर्म काण्ड से अधिक कर्मकाण्ड बौद्धों तथा तंत्रों में आया है। वैदिक कर्मोनुष्ठान में केवल हवन का क्रियान्वित रूप है जबकि बौद्धों में बहुत जटिल(कालचक्र पूजा प्रमाण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है) कर्मकाण्ड है। भगवान बुद्ध ने सत्य का साक्षात्कार कर लिया था और परब्रह्म परमेश्वर के स्थान पर एक शून्य किन्तु क्रियाशील तत्व को देख लिया था जिसे वैदिक और तान्त्रिक ऋषियों ने भी देखा था। इन दोनों विचारधाराओं के ऋषियों के बाद स्मृति शास्त्र का निर्माण हुआ और वैचारिक मतभेद आरंभ हुआ। आगे चलकर इसी वैचारिक मतभेद को राजनीतिज्ञों ने भुनाया और सत्ता प्राप्ति के लिए इस मतभेद का दोहन किया। इतिहासकारों को इस ओर ध्यान देना पड़ेगा और हिन्दुओं और बौद्धों के बीच कुछ मतभेदों को अन्तर्कलह का रूप देकर और अधिक जटिल बनाने से विरत होना पड़ेगा।

बौद्ध धर्म को मौर्य सम्राट अशोक का संरक्षण मिला और वह तब लगभग राजधर्म बन गया। उस समय हिन्दुओं के सभी संप्रदायों की संख्या मिलाकर बौद्धों से तो अधिक ही थी फिर भी राजकीय संरक्षण बौद्धों को मिलने से वह राजधर्म बना। किन्तु इसके दो सौ वर्षों के बाद शुंगवंश की स्थापना हो गई। शुंगवंश निर्माता सेनापति पुष्यमित्र ने अपने राजा वृहद्रथ का बध कर दिया। कतिपय इतिहासकार इसे हिन्दू और बौद्धों के अन्तर्कलह का परिणाम मानते हैं, जिसमें ए० एस० बाशम, रतिभान सिंह नाहर, राधाकृष्ण चौधरी आदि हैं। इतना ही नहीं पुष्यमित्र को बौद्ध संहारक के रूप में भी देखा गया। इतिहासकारों के पास स्रोत के लिए दिव्यावदान है जिसमें कहा गया है कि जो कोई बौद्ध भिक्षुओं का एक सिर देगा उसे सौ दिनार दूंगा[४]। अधिकांश भारतीय इतिहासकार इस पक्ष में है कि पुष्यमित्र ने बौद्ध मठों, स्मारकों को नष्ट कर दिया[५]। रतिभान सिंह नाहर ने ही प्रो० नागेन्द्र नाथ घोष के उद्धरणों की व्याख्या की है। जिसमें कहा गया है कि ब्राह्मण सेनापति बौद्धों का उत्पीड़क था। किन्तु बाशम प्रभृति इतिहासकार दिव्यावदान की बातों को महत्त्व नहीं देते जिसमें भरहुत के भग्नावशेषों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया है। शुंग काल में बौद्धस्तूप तोरण द्वार भी बने। बाशम ने इतना ही कहा है कि शुंगों को परंपरावादी

हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त था और उत्तर मौर्यों द्वारा हिन्दुओं की जिन पूजा पद्धतियों को नियंत्रित कर दिया गया था, उसे फिर से चालू किया गया । इस काल में यज्ञों का होना बताया गया है जिसमें अश्वमेध यज्ञ भी शामिल है। अशोक ने अश्वमेध यज्ञ को अवैध करवा दिया था, पुष्यमित्र ने उसे शुरू किया। पशु बलि को पुन: स्वीकार कर लिया गया।[६] किन्तु बाशम या तत्समकक्ष इतिहासकारों ने अश्वमेध यज्ञ में अश्वों के बध की बात कही है जो विधि में था ही नहीं । अश्वमेघ यज्ञ में पशुबलि दी जाती थी किन्तु अश्वों की नहीं। दूसरी ओर उत्तरकालीन स्मृतियों में जो प्राय: मौर्यों के पतन से शुंगकाल में रची गईं उनमें परंपरागत ब्राह्मणों को पशुबलि से विरत रहने का आदेश दिया गया है। हो सकता है पशुबलि परंपरागत हिन्दुओं का विरोध करने वाले तांत्रिकों द्वारा दी जाती हो।

उपर्युक्त कथन में हिन्दुओं के विरूद्ध क्रियात्मक पूजा पद्धति अर्थात् शास्त्र के विरुद्ध बातें देखने को मिलती हैं। स्मृति शास्त्रों[७] में ब्राह्मणों को राजा बनने की मनाही है। वह पुजारी और गुरु का ही काम संपादित कर सकता है। फिर वही शास्त्र शुंगों को राजा बनने की अनुमति कैसे दे सकता है। चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले चाणक्य स्वयं राजा नहीं बने जबकि समस्त राज्य उनकी मंत्रणा से चलता था। इतना ही नहीं चाण्क्य ने राजकाज चलाने की एक कुशल व्यवस्था की और उस व्यवस्था को राज्य के कार्य—कलापों से जोड़ा। अपरिहार्य कारणों से ब्राह्मणों के शस्त्र उठाने की बात आई है किन्तु वह किसी राजा के लिए स्वयं राजा बनने के लिए नहीं। (आचार्य द्रोण क्षत्रिय वंश के कौरवों के सेनापति बने थे तथा परशुराम ने कतिपय क्षत्रिय राजाओं से लड़ाई लड़ी)।

कतिपय इतिहासकारों ने शुंग वंशीय राजाओं को बौद्ध विरोधी बताया। वहीं उत्तरकालीन मौर्यों को हिन्दू विरोधी, किन्तु संस्कृत भाषा में काव्य साहित्य के अतिरिक्त धर्म शास्त्रों, पुराणों, निबंधों का संकलन, लेखन, अन्वेषण जितना उत्तर कालीन मौर्यों के शासन काल में हुआ उतना व्यापक अनुसंधान शुंग काल में नहीं हुआ जबकि बौद्धों के ग्रंथों का अनुवाद और अनुसंधान शुंग काल में हुआ। अस्तु शुंगों के काल में निरंतर चल रहे बौद्धों और हिन्दुओं के बौद्धिक विवाद का लाभ पुष्यमित्र को मिला होगा, ठीक उसी प्रकार जैसे वैष्णवों और शैवों के बीच चल रहे विवाद में कभी शैवों को लाभ मिलता था तो कभी वैष्णवों को। इसी तरह लाभ पाने वालों में कुछ और भी हिन्दू होगें जिस आधार पर पुष्यमित्र को चैत्य बिहारों को नष्ट करने वाला राजा घोषित किया गया।

शुंगों के बाद कण्व और आंध्र सातवाहन वंश के अधीन भारत का एक बड़ा भू भाग रहा। इतिहासकारों के अनुसार जिसमें करीब सभी लोग एकमत दिखते हैं। कण्ववंशीय राजा और सातवाहन वंश के संस्थापक गौतमी शातकर्णि भी ब्राह्मण ही थे और सातवाहन वैशीय गौतमी शातकर्णि को बौद्धों का नहीं अपितु क्षत्रियों का मान मर्दन

करने वाला ब्राह्मण कहा गया। नासिक अभिलेख के आधार पर हिन्दुओं के बीच अन्तर्कलह की छाप दिखाई देती है किन्तु तत्कालीन इतिहास में ऐसी कोई चर्चा नहीं की गई है जिससे यह सिद्ध हो सके कि बौद्धों के साथ कोई सशस्त्र संघर्ष हुआ हो।

भारत में कुषाण वंश के शासकों में कनिष्क बौद्ध हो गया था। कनिष्क का बौद्ध होना वैसी ही घटना है जैसी अशोक का बौद्ध होना था। बौद्ध परम्परा में कहा गया है कि प्रारम्भ में अशोक रक्त पिपासु नर पिशाच था परन्तु बौद्ध होने के बाद उसमें आमूल परिर्वतन हो गया। बौद्ध होने के बाद भी उसने हिन्दुओं के साथ न केवल अच्छा ही किया परन्तु उन्हें आश्रय भी दिया। कनिष्क द्वारा जारी की गई मुद्राओं पर सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि के अतिरिक्त बुद्ध के भी चित्र मिलते हैं।

कनिष्क कालीन भारत में बौद्धों के बीच ही एक बौद्धिक कलह का सूत्रपात हुआ। फलस्वरूप यह महायान और हीनयान दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। हीनयान वालों ने महायान वालों पर ब्रह्मवादी होने का आरोप लगाया। जबकि महायान वालों ने हीनयान वालों को संकीर्ण बौद्ध कहा। महायान में पंचाध्ययायी बुद्ध एवं अमिभाम जैसे बौधिसत्त्वों का आविर्भाव हुआ। इनकी प्रतिमाएं बनने लगी और पूजा का कर्मकाण्ड भी बढ़ता गया। इतिहास में अशोक के बाद कनिष्क को दूसरा बौद्ध माना गया। इतिहासकारों को यहां उसकी धार्मिक मान्यताओं का अध्ययन करने के पश्चात् तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति पर विचार करना चाहिए। तत्कालीन दृष्टिकोण यह भी हो सकता है कि हिन्दुओं के साथ बौद्धों को मिला दिया जाए। अत: ऐसा रास्ता अपनाया गया होगा जिससे प्रतीत होने लगा कि बौद्ध धर्म ब्राह्मण धर्म की तरह अग्रसर होता जा रहा है। कनिष्क महायान बौद्ध हो गया। उसके परामर्श दाता में अश्वघोष आदि दार्शनिक थे। अश्वघोष ने सौदरानन्द और बुद्ध चरित्र जैसे महाकाव्यों की रचना की। महायान धर्म के प्रचार के लिए कनिष्क ने उसी प्रकार का काम किया जिस प्रकार अशोक ने किया था। कनिष्क काल में हिन्दुओं और बौद्धों के बीच कोई बड़ा संघर्ष या कलह नहीं हुई। कुषाण वंश के पतन से कोई सौ वर्षों तक कोई सुसंगठित राजनीतिक सत्ता नहीं हो पाई। सुदृढ़ राजनीतिक सत्ता के अभाव में देश अंधकार से आवृत हो गया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कुषाण वंश का अन्त कोई हिन्दू बौद्ध अन्तर्कलह से नहीं हुआ। सत्ता परिवर्तन एक इतिहास है । इसका कारण किसी न किसी रूप में जनता के भीतर का असंतोष रहता है। उस आक्रोश के तात्कालिक कारण होते हैं।

तीसरी शताब्दी तक भारत वर्ष में तीन राजवंशों का उदय हुआ। उतर पूर्वी भारत में गुप्त वंश, दक्षिण में वाकाटक और पश्चिमोत्तर में नागवंश। इससे इतिहासकार परिचित हैं। धीरे—धीरे गुप्त वंश भारत वर्ष के एक आदर्श शासन के रूप में उभरा। इस राजवंश में सभी धर्मों का समान आदर हुआ। गुप्त वंशीय राजा शैव थे और वे अपने राज्यों में ब्राह्मणों एवं शैवों के बीच मेल कराने में सफल हुए। प्रचलित पूजा—पद्धति के

आधार पर इस बात की सिद्धि के लिए छोटी–मोटी पुस्तकों का प्रणयन भी हुआ जो इतिहास के लिए स्रोत का काम करेंगी। गुप्त वंशीय राजा मूल रूप से समन्वयवादी थे। हिन्दू धर्म के आदर्श की पराकाष्ठा इस में देखने को मिलती है जिसमें हिन्दुओं की सहिष्णुता का कोई जवाब नहीं, किन्तु यही सहिष्णुता मुस्लिम आक्रमणों में हारने का कारण बनी।

जहां तक बौद्ध मत का सवाल है वह फाह्यान के भारत यात्रा वर्णन से स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में बौद्धधर्म के दोनों सम्प्रदाय स्वाभाविक रूप से विकसित हुए। फाह्यान के अनुसार कुण्डल वन (कश्मीर) गांधार (अफगानिस्तान) तथा पंजाब बौद्धों के केन्द्र थे जहां हजारों बौद्ध बिहार थे और लाखों की संख्या में बौद्ध भिक्षु भिक्षुणियां निर्द्वन्द्व रूप से रहते थे। बंगाल बिहार में भी बौद्धों के केन्द्र थे पर उतने विकसित नहीं। तत्कालीन समाज के प्रमुख अंग हिन्दू शिल्पियों तथा हिन्दू व्यवसायियों ने बौद्धों के बिहारों, गुफाओं और मठों का निर्माण किया तथा संरक्षण दिया। 'प्राचीन भारत का इतिहास' में डा० डी० एन० झा तथा श्रीमाली का कहना है कि सैद्धान्तिक रूप से बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म का घोर विरोधी था'। समीचीन नहीं हैं। हां बौद्धों से कतिपय अंशों में मतभेद है। अगर इनका आशय जातीय रूप से कलह की ओर है तो हम गुप्त काल के परिपेक्ष्य में थोड़ी बातों को शोध के लिए रखना चाहते हैं। रोमिला थापर ने अपने 'भारत का इतिहास' में लिखा है कि ''गुप्तकाल में बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म दोनों को सैद्धांतिक दृष्टि से व्यापक समर्थन था परन्तु उपासना, कर्म और व्यवहार में उसने ब्राह्मण धर्म से इतना समझौता कर लिया था कि उसे ब्राह्मण धर्म का एक सम्प्रदाय समझा जा सकता था। समस्त धर्मों द्वारा संस्कृत भाषा का प्रयोग बढ़ रहा था और संभवतः इसका कारण यह था कि संस्कृत को प्रतिष्ठित भाषा समझा जाता था।

उत्तर गुप्तकालीन समाज में एक नया और विचित्र सम्प्रदाय प्रकट हुआ जिसका आरंभ देवियों की पूजा से हुआ और ये देवियां जन शक्ति के उपासक सम्प्रदाय से सम्बद्ध थीं। इन देवियों को केन्द्र में रखकर अनेक प्रकार की चमत्कारिक क्रियाएं सम्पन्न की गईं। जिन्हें बाद में तंत्रवाद कहकर पुकारा गया। बौद्ध मत पर तंत्रवाद का प्रभाव पड़ा और ईसा की सातवीं शताब्दी में बौद्धमत की एक नई शाखा का जन्म हुआ जो वज्रयानी बौद्ध कहलायी और उसका केन्द्र पूर्वी भारत में था। बज्रयानी बौद्धों ने वर्तमान बौद्ध देवताओं की पुरुष आकृतियों को नारी प्रतिरूप दिए जिन्हें तारा नाम से पुकारा गया। तारा सम्प्रदाय नेपाल और तिब्बत में आज भी विद्यमान हैं''। शोध का विषय बनता है कि रोमिला थापर यह तारा संप्रदाय कहां से लाईं। क्या यह बज्रयान से अलग कोई शाखा है? इसका कोई एक शास्त्र है? देवी तारा बज्रयानियों की एक प्रमुख देवी हैं। अन्य देव–देवियों के समान बज्रयानियों ने तारा की उपासना की है। हिन्दुओं ने भी देवी तारा की उपासना महायानियों के रूप में की है।

यह बात विचाणीय है कि इतिहासकार स्वयं अपने आप में क्या है? और गैर इतिहासिकों को ये क्या बताना चाहते हैं? यहां उन इतिहासकारों से तथ्यात्मक अन्वेषण और सर्वेक्षण के आधार पर कहना उचित होगा चाहती हूं कि एक ओर तो वे पारिवारिक और सामाजिक संस्कारों से बंधे हुए हैं। देवी—देवताओं की पूजा तथा संस्कारों का क्रियान्वयन करते हैं तो दूसरी ओर देवी—देवताओं का इतिहास की पुस्तकों में अमर्यादित ढंग से वर्णन करते हैं। जिससे हिन्दू भावना पर चोट पड़े। क्या ये ही इतिहासकार इसाई, मुसलमान या यहूदी के धार्मिक इतिहास पर इस प्रकार का आचरण कर सकते हैं? इसी प्रकार हिन्दुओं और बौद्धों के अन्तर्कलह का अर्थ शस्त्रों के साथ युद्ध या मारकाट के अभिप्राय से समझते हैं।अथवा बौद्धिक विचारधारा से?

गुप्त शासकों के बाद उत्तर भारत में एक सुसंगठित राजवंश की स्थापना हुई—वर्द्धन वंश की। यह सर्वविदित है कि हर्षवर्द्धन के अधीन प्राप्त की गई उत्तर भारत की एकता उसकी मृत्यु के पश्चात् समाप्त हो गई। हर्षवर्द्धन इस युग के सबसे समर्थ राजा के रूप में अवतरित हुआ। वह किसी अन्तर्कलह का परिणाम नहीं था प्रत्युत राजा से सम्राट बनने की उत्कंठा ने उसे महान बना दिया। हर्षवर्द्धन के सम्बन्ध में हवेनसांग, इत्सिन एवं अन्य बौद्ध चीनी यात्रियों ने अपने भारत वृत्तान्त में अच्छा चित्र उपस्थित किया है। वर्द्धन राजवंश समस्त हिन्दू राजाओं में पंथनिरपेक्ष था। प्रभाकर वर्द्धन सूर्य का उपासक था। राज्यवर्द्धन बौद्ध हो गया और हर्षवर्द्धन ने शिव, सूर्य और बुद्ध तीनों को श्रद्धांजलि अर्पित की। उसने इन तीनों की सेवा के लिए कीमती मंदिर बनवाये किन्तु यह भी कहा जाता है कि जीवन के अन्तिम दिनों में वह महायान बौद्ध हो गया। इतिहासकार इसे हवेन्त्सांग के प्रभाव का परिणाम मानते हैं। उसके राज्य में सनातन धर्म की सभी शाखाओं, बौद्ध तथा जैन की भी सभी शाखाओं के लिए पर्याप्त मंदिर बने। इन सभी सम्प्रदायों उपासकों के अतिरिक्त अच्छी संख्या में दार्शनिक भी थे। राधा मुकुंद मुखर्जी ने कहा है कि वर्द्धन कालीन समाज के लोगों को विभिन्न चिन्हों से जाना जा सकता था—जैसे मुण्डमाल, धुटे सिर, गोंठ में बन्धे बाल, भस्म में रंगे शरीर। इतना ही नहीं अद्वैतवाद से लेकर लोकायनों आदि के अनुयायी समाज के विविध रूपों को दर्शाते हैं। आश्चर्य का विषय है कि इन सभी संप्रदायों में कभी कोई हिंसा की घटना का वर्णन नहीं मिलता। राधा कुमुद मुखर्जी ने श्वांग चांग का हवाला देते हुए कहा है कि तपस्वी और सन्यासी अपना भोजन मांगकर खाते थे। अपरिग्रह के आदेश का पालन करते थे और उस समय के ज्ञान—विज्ञान के सम्बन्ध में जनता के बीच प्रवचन करते थे। काशी ब्राह्मण धर्म की शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था तो नालंदा महाविहार महायान बौद्धों का। यहां बौद्ध तंत्रानुसार देव देवियों की अनगिनत मूर्तियां थी। श्वांग—चांग पांच वर्ष तक यहां का छात्र रहा था। कोरिया, मंगोलिया, चीन, जापान, बुखारा, तिब्बत, लंका आदि से विद्यार्थी यहां पढ़ने के लिए आते थे। यह और आश्चर्य का विषय है कि इतनी विविधताओं के बीच

धन से सम्पन्न समाज निश्चित रूप से एक दूसरे को विश्वास की दृष्टि से देखता रहा होगा तभी तो कोई हिंसक घटना नहीं हुई।

वर्द्धनवंश के पतन के बाद भारत वर्ष अनेक हिन्दू राज्यो में विभक्त हुआ तथा इन्होंने दसवीं शताब्दी से सत्तरहवीं शताब्दी तक तुर्क अफगान लुटेरों तथा शासकों के साथ युद्धों में अपना समय बिताया। तुर्क अफगान मुस्लिम शासकों की अधीनता में भारतीय समाज को रहना पड़ा जिसमें सभी धर्मों के लोग थे। हिन्दुओं के ऊपर अत्याचार, हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त करना, हिन्दुओं तथा बौद्धों के विश्वविद्यालयों को मिट्टी में मिलाना, मुस्लिम शासकों का मुख्य कार्य रहा। उक्त आठ सौ वर्षों के मुस्लिम शासन के बीच कतिपय मुस्लिम शासको ने हिन्दुओं के हित के लिए भी काम किया है। परवर्ती मुगल शासको ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया कि उन्हें हिन्दुओं का राजा बनकर ही रहना है। मुस्लिम राष्ट्र यहां सम्भव नहीं है जबकि संपूर्ण अफगानिस्तान तथा भारत के पश्चिमी भाग (अभी पाकिस्तान) में बसे हुए हिन्दुओं को मुसलमान बना दिया गया। मंदिरों को तोड़कर मस्जिद बना दी गयी, बौद्ध विहारों को मिट्टी में मिला दिया गया। धर्मान्तरण का कार्य उतना नहीं हो सका क्योंकि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के हिन्दुओं की बहुसंख्यक जातियों ने पठानों या मुगलों की प्रताड़ना को सहा किन्तु प्रतीक चिन्हों को नहीं मिटने दिया। इन आठ सौ वर्षों में इतिहास या साहित्यिक कृतियों में ऐसी सूचना नहीं मिलती है कि बौद्धों के बीच कोई बड़ी हिंसक घटना घटी हो।

उक्त प्रताड़ना के बीच समाज ने अपने आपको बचाते हुए जीवंत रखा। ब्राह्मण धर्म में और कठोरता आ गई। जातीय शासन को कठोर किया गया और वर्तमानकालिक जातीय शासन को अनुशासित करने का बीज परवर्ती मुगल साम्राज्य के समय में रोपित हुआ जो जिसको मुस्लिम कट्टरता के कारण हुआ था। यदि भिक्षुओं के रूप में बौद्धों की संख्या कम हो गई तो हिन्दुओं के संन्यासियों की संख्या भी घट गई। इतिहासकारों ने यह मत व्यक्त किया है कि बौद्धों की संख्या घट गई यह समीचीन नहीं है। संख्या घटने का तात्पर्य या तो धर्मान्तरण है या नरसंहार। आठ सौ सालों में कोई नरसंहार नहीं हुआ, और न ही पुन: बौद्धों का हिन्दुओं में मतान्तरण हुआ।

हिन्दुओं और बौद्धों के बीच अभी एक मात्र बोध गया में बौद्ध मन्दिर का तनाव है। वर्तमान में बौद्धों और हिन्दुओं के चार चार सदस्यों की एक प्रबंध समिति है जिसका अध्यक्ष जिला अधिकारी होता है। उक्त बौद्ध मंदिर के महंत हिन्दू हैं। यहां यह तनाव किसी पूजा, उपासना या अन्य किसी वैचारिक मतभेद आदि के कारण नहीं बल्कि स्थानीय आन्तरिक कारणों से है। इस मठ में हिन्दू और बौद्धों दोंनों धर्मों के देवता स्थापित हैं। दोनों धर्मों के लोग पूजा करते हैं। हिन्दू और बौद्ध के बीच कोई अस्पृश्यता का प्रश्न ही नहीं उठता। हिन्दुओं के अवतारवाद अवधारणा के अनुयायी बुद्ध को भी विष्णु का अवतार मानकर पूजा करते हैं।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर स्पष्ट है कि हिन्दुओं और बौद्धों के बीच वैचारिक और उपासना पद्धति का मतभेद दीखता है। इसी तरह का मतभेद तो सकल हिन्दुओं के वैष्णव, शैव आदि सम्प्रदायों में भी रहा है अन्यथा एक दूसरे की आस्थाओं के प्रति सनातनी हिन्दुओं और बौद्धों में सम्मान की गहरी भावना है। बौद्ध समाज हिन्दू देवी देवताओ की पूजा करता नजर आता है तो दूसरी ओर सारनाथ जैसे बौद्ध तीर्थ स्थलों में हिन्दू माथा टेकता है।

अत: इतिहासकारों द्वारा इस का विश्लेषण तत्कालिक अस्थायी दृष्टि से न करके चिरस्थी मूल्यों के आधार पर किया जाना आवश्यक है।

सन्दर्भ :

१. Velandai Gopal Aiyer- The chronology of Ancient India - The Date of Budha - page 97

२. A.L .Basham - Wonder that was India page 339-40

३. राधा कृष्ण चौधरी – प्राचीन भारत का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास

४. योमे श्रमण शिरो दास्यति तस्याह दीनार– शतम् दास्यामि दिव्यावदा

५. रतिभान सिंह नाहर – प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ २९५–९६

६. A.L Basham - Wonder that was India page ५८

७. (क) मनुस्मृति – १–८८,८९

(ख) याज्ञवल्क्य– १–५–११८,११९

८. डॉ० डी०एन० झा और श्रीमाली – प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ संख्या ३२१

९. रोमिला थापर – भारत का इतिहास, पृष्ठ संख्या – १२१

रीडर एवं अध्क्ष इतिहास विभाग,

वीमेन्स कॉलेज समस्यतीपुर–बिहार

रणथम्भौर का हम्मीर चौहान

● गोकुल चन्द गोयल

सिंह सुवन, सतुरुष वचन, कदली फलै इक बार।
त्रिया तेल, हम्मीर हठ, चढ़ै न दूजी बार।

भाट्ट वंशों के अनुसार चौहानों की वंश परम्परा में हम्मीर से सात पीढ़ी पहले 'कदम्बशाखा' के राजा जयन्त ने 'तपपद्त्रापि' से वरदान प्राप्त कर वर्तमान राजस्थान प्रान्त के रणथम्भौर नामक अभेद्य दुर्ग का निर्माण करवाया। यह दुर्ग शक्ति एवं प्रतिष्ठा का प्रतीक था। इस दुर्ग पर अधिकार मात्र से शासक का गौरव बढ़ता था। इसी कारण एक से बढकर एक राजा की यह कामना रहती थी कि रणथम्भौर का किला उसके अधिकार में रहे। दुर्ग की वास्तु एवं स्थान के चयन ने इस दुर्ग को सदैव अभेद्य बनाये रखा। शत्रु का इस दुर्ग को विजित करना लोहे के चने चबाने जैसा कार्य था। यह दुर्ग सदैव अविजित ही रहा। विकट पहाड़ी रास्ते, घने जंगल व यहां के वीरों के रणकौशल ने यह सम्भव बनाया।

हम्मीर रणथम्भौर का अन्तिम शक्तिशाली और महत्त्वाकांक्षी नरेश था। 'हम्मीर रासो' व 'हम्मीर महाकाव्य' के अनुसार गद्दी पर बैठते ही उसने दिग्विजय की नीति अपनाई और दूर–दूर तक के क्षेत्रों को विजित करना प्रारम्भ कर दिया। सर्व प्रथम उसने भीमरस के शासक अर्जुन को परास्त किया। ईस्वी सन् १२८४ में उसने गढ़मण्डल (माण्डलगढ़) किले को अपने अधिकार में कर लिया। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक – डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार ई.स. १२८७ में हम्मीर चौहान ने गढ़मण्डल से दक्षिण की ओर अपनी शक्ति बढ़ाने के प्रयास किये। उसने परमारवंशीय शासक भोज को पराजित किया। भोज का शासन उज्जैन एवं धार में था और दक्षिण की ओर बढ़ते हुए उसने आबू, वर्धनपुर, जंघा, पुष्कर और चित्तौड़ को विजित किया। १२८८ में हम्मीर पुन: रणथम्भौर पंहुचा। त्रिपुर नगरी के शासक द्वारा इस विजय के उपलक्ष्य में हम्मीर का भव्य स्वागत किया गया।

'बलवन शिलालेख' के अनुसार–त्रिपुर नरेश से मैत्री पाकर हम्मीर ने अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया। इसी शिलालेख में उल्लेख है कि अश्वमेध के लिए नियुक्त हम्मीर की रणवाहिनी ने १३ युद्ध में मालवा नरेश अर्जुन की सम्पूर्ण हस्ती–सेना पर अधिकर कर लिया। सभी १३ युद्धों में हम्मीर विजयी रहा।

भारत का अतीत गौरवशाली रहा है किन्तु भ्रमित एवं भारत विरोधी इतिहासकारों के कारण भारतीय इतिहास के अनेक जाज्वल्यमान नक्षत्र उनके विचारों के

अंधकार में छिपे रहे। भारतीय इतिहास के ऐसे अनेक अनछुए पृष्ठ हैं जिनकी ओर इतिहासकारों व देशवासियों का ध्यान जाना अत्यन्त आवश्यक है। ये अनछुए पृष्ठ देश की युवा पीढ़ी के लिए अत्यन्त प्रेरणास्पद हैं। अनेक विभूतियां ऐसी हुई हैं जो अभी तक भी बहुश्रुत नहीं है। यद्यपि उनकी गरिमा सभी देशवासियों के लिए प्रेरणादायक है। उन्हीं में से हैं अभेद्य दुर्ग रणथम्भौर के यशस्वी चौहानवंशीय शासक राव हम्मीर देव जिनका जीवन वृत्त एंव व्यक्तित्त्व बहुआयामी रहा है एवं इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है।

इतिहासकारों ने कहा है 'गढ़ तो चित्तौड़गढ़ और गढ़ गढ़ैया। '' किन्तु अरावली की उपत्यकाओं में स्थित दुर्ग रणथम्भौर की अभेद्यता चित्तौड़ से कम नहीं अधिक ही है। अलाउद्दीन खिलजी रणथम्भौर विजय करने के लिए ग्यारह मास की लम्बी अवधि तक दुर्ग की प्राचीरों से सिर टकराता रहा जब कि चित्तौड़ पर उसने छः मास में ही विजय प्राप्त कर ली थी। ऐसे इतिहास प्रसिद्ध एवं अभेद्य दुर्ग का शासक था राव हम्मीर जो चौहानवंशी राज्य परम्परा का यशस्वी शासक था जिसने सवाई माधोपुर से १३ किलोमीटर दूर रणथम्भौर दुर्ग में १९ वर्ष तक शासन किया तथा वीरता, साहस एवं दृढ़ इच्छा शक्ति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। हम्मीर अपने समय का पराक्रमी, कला प्रेमी, मातृभूमि—भक्त, शरणागत रक्षक कुशल शासक था। हम्मीर का व्यक्तितत्व बहुआयामी था। हम्मीर के जन्म के समय दिल्ली की गद्दी पर मलेच्छों का शासन था। देश की राष्ट्रीय शक्ति बिखरी हुई थी तथापि अनेक शासक विशेषकर राजपूताने के राजपूत शासक अपनी उत्कृष्ट देश भक्ति, पराक्रम व शौर्य के सहारे स्वतंत्रता का परचम फहरा रहे थे। राव हम्मीर भी उनमें से एक था। राव हम्मीर का जन्म ७ जुलाई १२७२ को चौहान वंशी राव जैत्रसिंह के तीसरे पुत्र के रूप में हुआ । जन्म के समय ही ज्योतिषियों ने उसके अत्यन्त पराक्रमी व यशस्वी होने की भविष्यवाणी कर दी थी। बालक हम्मीर इतना बहादुर, साहसी एवं निर्भीक था कि वह तलवार के एक वार से ही मदमस्त हाथी का सिर काट देता था तथा मुक्के के एक प्रहार से शक्तिशाली ऊंट को धूल चटा देता था। हम्मीर की इस बहादुरी से प्रभावित होकर पिता जैत्रसिंह ने अपने जीवनकाल में १६ दिसम्बर सन् १२८२ को अल्प आयु में ही हम्मीर का राज्याभिषेक कर दिया। हम्मीर के राज्यारोहण के समय दिल्ली में खिलजी वंश का शासन था। हम्मीर ने चौहान वंश की रणथम्भौर तक सिमटी राज्य सीमाओं का कोटा, बूंदी, मालवा तथा ढूंढाढ के कई स्थानों तक विस्तार किया। हम्मीर ने अपने जीवन काल में १७ युद्ध किये जिनमें से १६ में उसने स्पष्ट विजय प्राप्त की तथा १७ वें एवं अन्तिम युद्ध में दिल्ली के शासक अलाउद्दीन खिलजी को ग्यारह मास तक छकाया व रणथम्भौर दुर्ग की सुदृढ़ प्राचीरों से सिर टकराने को विवश किया। खिलजी हम्मीर को वीरता व पराक्रम से पराजित नहीं कर सका।

राव हम्मीर का १७ वां एवं अन्तिम युद्ध उसके विजय अभियान का अंग नहीं था अपितु अलाउद्दीन खिलजी के राज्य के एक भगौडे मुहम्मदशाह को शरण देकर रक्षा

के कारण खिलजी के आक्रमण का प्रतिरोधी रक्षात्मक युद्ध था। हम्मीर ने मुहम्मदशाह को शरण देकर अभय दान दिया था तथा उसके कारण ही खिलजी से युद्ध का खतरा मोल लिया था। रणथम्भौर दुर्ग में हम्मीर के हितचिंतक व्यवसायियों ने मुहम्मदशाह को लौटाकर युद्ध का खतरा मोल न लेने का परामर्श हम्मीर को दिया था किन्तु आन–बान के धनी हम्मीर ने शरणागत को खतरे में ढकेलना स्वीकार नहीं किया तथा युद्ध का वरण किया। उससे हम्मीर के दृढ़ एवं शरणागत रक्षक व्यक्तित्व का प्रमाण मिलता है।

हम्मीर ने अपने किले रणथम्भौर को अनेक पड़ौसी राज्यों की मदद से सुदढ़ राज्य बना लिया था। दिल्ली के तत्कालीन शासक जलालुद्दीन खिलजी ने हम्मीर की बढ़ती शक्ति को पराजित करने की दृष्टि से २२ मार्च, १२९१ को रणथम्भौर की ओर प्रयाण किया व रणथम्भौर पंहुच कर सुलतान ने गुप्त रूप से रणथम्भौर किले की अभेद्यता की जानकारी प्राप्त की तथा उससे वह भयभीत हो उठा और उसने बिना आक्रमण ही वापिस दिल्ली लौटने का निश्चय कर लिया। हम्मीर द्वारा की गई किलाबंदी व दुर्ग की सुरक्षा व्यवस्था तथा हम्मीर के शौर्य ने ही सुलतान को दिल्ली लौटने के लिए विवश किया जबकि सुलतान के सलाहकारों में से एक मलिक अहमद ने विजय हेतु युद्ध की सलाह दी किन्तु १२ जून, १२९१ को सुलतान अपने जीवनकाल में रणथम्भौर विजय का विचार त्याग कर अपने खेमें उखाड़कर दिल्ली रवाना हो गया। इस समय हम्मीर की आयु मात्र १९ वर्ष थी।

अपने चाचा जलालुद्दीन खिलजी को मारकर अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली की गद्दी पर बैठा। महत्त्वाकांक्षी अलाउद्दीन खिलजी को समृद्ध राज्य गुजरात पर हमला करने से पूर्व मार्ग में पड़ने वाले बाधक एवं समृद्ध राज्य रणथम्भौर पर अधिकार करना आवश्यक था।

ऐतिहासिक उल्लेखों के अनुसार चौहान वीर हठी हम्मीर ने दिल्ली सुलतान को अपने जीते जी कभी राज करने नहीं दिया। उसने सुलतान के विरुद्ध मंगोलों को रणथम्भौर में संरक्षण दिया। ये मंगोल मुहम्मदशाह के नेतृत्व में शरण पाने हेतु १२९८ ई. में हम्मीर के पास आये थे। हम्मीर की उक्त बातों से अलाउद्दीन असंतुष्ट था। १२९९ ई. में उसने उलुमर खां, षलिफ खां तथा नुसरत खां के नेतृत्व में एक बहुत बड़ी सेना रणथम्भौर विजय के लिए भेजी। इस सेना ने बनास के किनारे पड़ाव डाला तथा आसपास के क्षेत्र में कुचक्र करने प्रारम्भ किए। लेकिन रणथम्भौर दुर्ग विजय का इनका सपना केवल सपना ही रह गया।

अत: सन् १३०० में अलाउद्दीन खिलजी ने जब रणथम्भौर पर आक्रमण किए तो प्रारम्भिक युद्धों में उसकी सेना को हम्मीर की सुदृढ़ एवं अनुशासित सेना से पराजय का मुख देखना पड़ा था और सेनापतियों को वापिस लौटना पड़ा था। किन्तु खिलजी की रणथम्भौर–विजय की लालसा ने उसे पुन: युद्ध हेतु प्रेरित किया और उसने स्वयं आकर किले की घेराबंदी की। सुलतान हम्मीर की कुशल रणनीति के समक्ष निराश व विवश

था। अत: उसने कपट नीति का सहारा लिया। किले में एक ओर रसद जाने के लिए मार्ग रोक लिए और दूसरी ओर हम्मीर के कुछ सेनानायकों को अपनी ओर मिलाने में सफल हो गया। फलस्वरूप अन्तिम रूप से क्षत्राणियों को जौहर करना पड़ा तथा महान दिग्विजयी शासक हम्मीर ११ जुलाई, १३०२ को इस संसार से विदा हो गया, किन्तु छोड़ गया अपने पीछे शौर्य साहस एवं पराक्रम की अमर कथा।

हम्मीर का मूल्यांकन

राव हम्मीर केवल वीर योद्धा ही नहीं था वह स्वयं विद्वान था। वह गुणी जनों का प्रशंसक था। रणथम्भौर क्षेत्र के ही प्रसिद्ध आयुर्वेद विद्धान महर्षि शार्ङ्गधर रचित शार्ङ्गधर संहिता में हम्मीर रचित श्लोकों का उल्लेख मिलता है। हम्मीर ने हर दर्रे पर रक्षक द्वारों का निर्माण करवाया था। मालवा विजय के पश्चात् 'पुष्पक' नामक भवन के निर्माण का विशेष उल्लेख मिलता है। दुर्ग में आज भी अनेक भवन, मन्दिर पूजा स्थल व खण्डहर नगरीय बस्ती हम्मीर के काल की शिल्प एवं वास्तुकला के बेजोड़ नमूने हैं। दुर्ग में स्थित गणेश मन्दिर लाखों–लाखों भक्तों का श्रद्धा केन्द्र है। हम्मीर एक योग्य, कुशल, वीर, एवं प्रजारक्षक शासक था। रणथम्भौर के किले में व्यवस्थित नगरीय बस्ती, हाट बाजार, महल छतरियां आदि थे जिनके अवशेष व खण्डहर अभी विद्यमान है। हम्मीर के राज्य में प्रजा सुख चैन से रहती थी। व्यापार, व्यवसाय, समृद्ध था। स्वर्णाभूषणों के भण्डार भरे थे। हम्मीर को अपनी प्रजा का इतना ध्यान रहता था कि जब किला संकट में पड़ा तो उसने अपनी प्रजा एवं सेनानायकों को अन्यत्र जाकर सुरक्षित स्थान पर स्थानांतरित होने का सुझाव दिया जिसे हम्मीर के प्रति श्रद्धा के कारण किसी ने स्वीकार नहीं किया। 'जाजा' नामक सेनानायक तो हम्मीर की मृत्यु के बाद भी दो दिन तक शत्रु सेना से युद्ध करता रहा था। ऐसा महान था हम्मीर का व्यक्तित्व।

हम्मीर के राज्य की सीमा विस्तृत थी, जहां वह योग्य प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन करता था। १० वर्ष की अल्पआयु में राजगद्दी, १९ वर्ष की आयु में दिल्ली शासक जलालुद्दीन खिलजी को बिना युद्ध किए वापस लौटने को विवश करना, २९ वर्ष में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी को लोहे के चने चबाकर वीरगति प्राप्त करना हम्मीर जैसे यशस्वी व्यक्तित्व की महानता में चार चांद लगा देते हैं। हम्मीर स्वयं परम शिव उपासक था। हम्मीर सर्व पंथ समभाव को मानने वाला था। एक हिन्दू शासक के रूप में उसने महान ख्याति अर्जित की तथापि अपने राज्य में सभी पंथों को आदर दिया। मुहम्मदशाह को शरण देना और उसकी रक्षार्थ अपना सर्वस्व बलिदान कर देना हम्मीर हठी की उदार संस्कृति का परिचायक है। हम्मीर की सेना में राजपूत के साथ–साथ विश्वस्त मुसलमान सैनिक भी थे। शिव, विष्णु, जैन, इस्लाम, काली के पूजा स्थल हम्मीर के सभी धर्म पंथों के प्रति आदर भाव के प्रमाण है। हम्मीर की सेना के तोपची तो विशेष रूप से मुसलमान ही थे। जिनके वंशज अभी भी सवाई माधोपुर में रहते हैं। हम्मीर के राज्य में ज्योतिष, जंत्र–मंत्र आदि का भी समुचित स्थान था। हम्मीर एक धर्म रक्षक, स्वतंत्रता प्रिय,

मातृभूमि भक्त, शरणागत रक्षक, आन–बान–शान का धनी यशस्वी शासक था जिसके स्मरण मात्र से मन में वीरोचित भाव का स्फुरण होता है। हम्मीर वीरता का पुजारी था। उसने अपने राज्य में पहलवानों को प्रोत्साहित करने हेतु व्यायामशालाओं की उचित व्यवस्था की थी जहां कुश्ती के साथ–साथ युद्धाभ्यास भी कराया जाता था। हम्मीर ने राजपूत के भारत के इतिहास को गौरव प्रदान किया है।

प्रसिद्ध इतिहासकार डा. दशरथ शर्मा ने हम्मीर की प्रशंसा निम्न प्रकार की है– 'हम्मीर की गणना विशेष प्रकार के राजपूतों में की जाएगी। वीर तथा अपने मित्रों के प्रति वफादार, हिन्दू संस्थानों का रक्षक, वीरता एवं राजपूती परम्पराओं में विश्वास रखने वाला, हम्मीर यशस्वी शासक था। उसका नाम अपने देशवासियों के हृदयों में आत्मबलिदान एवं अपने वचनों की रक्षा हेतु दृढ़ता के लिए सदैव विद्यमान रहेगा। डा. के.एस.लाल के शब्दों मे ''हम्मीर अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षार्थ अपनी बलि देने वाला वीर राजपूत था।'' हम्मीर का बहुआयामी व्यक्तित्त्व तथा हम्मीर की शौर्य पूर्ण कीर्ति गाथा सदियों तक मातृभूमि भक्तों की प्रेरणा का अजस्र स्रोत रहेगी।

हिन्दू धर्म याने न रुकने वाला, जिद के साथ आगे बढ़ने वाला, सत्य की खोज के मार्ग में थका हुआ सा, आगे जाने वाली प्रेरणा का साथ नहीं देने वाला प्रतीत होता है। इसका कारण हम थके हुए हैं। धर्म थका नहीं। जिस क्षण यह थकान दूर होगी, उस क्षण हिन्दू धर्म का भारी विस्फोट होगा और भूतकाल में कभी नहीं हुआ इतने बड़े प्रमाण में हिन्दू धर्म अपने प्रभाव व प्रकाश से चमक उठेगा।

– महात्मा गान्धी

श्रावणी पूर्णिमा का पावन त्यौहार

• चेतराम गर्ग

श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाया जाने वाला श्रावणी पूर्णिमा के पावन त्यौहार का हमारे राष्ट्र जीवन में विशेष महत्त्व है। भारत की वैदिक ऋषि परम्परा में यह त्यौहार मुख्यत: वेदाध्ययन एवं स्वाध्याय के समारम्भ का पर्व है और इसके साथ ही इस दिन को रक्षा बन्धन के रूप में मनाने की व्यापक परम्परा है।

आज रक्षा बन्धन को मुख्यत: बहन–भाई के त्यौहार के रूप में मनाने का चलन स्थापित हो गया है। कुछ दशकों पहले तक पुरोहित अपने यजमानों के घर–घर जा कर परिवार के प्रत्येक व्यक्ति–स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सभी को राखी (रक्षा–सूत्र) बांधते थे। यही नहीं, देव पूजा के मुख्य पात्र तथा घर में प्रयुक्त प्रमुख उपकरणों सिलाई मशीन आदि को भी राखी बांधी जाती थी। यह प्रथा अभी भी प्रचलित है, लेकिन धीरे–धीरे कम होती हुई दिखती है। वास्तव में पुरोहितों द्वारा इस दिन यजमानों में शक्ति जागरण कर के देश, समाज और स्वत्व रक्षा के लिए प्रतिबद्ध किया जाता था। पुरोहित जब यजमान के हाथ की कलाई में रक्षा–सूत्र बांधता है तो उस समय यह मन्त्र कहा जाता है–

येन बद्धो बलि राजा दानवेन्द्रो महाबल:।
तेन त्वामनुबध्नामि रक्षे मा चल मा चल।।

अर्थात् जिस रक्षा सूत्र की शक्ति से महाबली दानवों के राजा बलि बांधे गए थे उसी रक्षा सूत्र को मैं तुम्हें बांधता हूं। हे रक्षा सूत्र! चलायामान न होकर, सुस्थिर रहकर इनकी रक्षा करना।

इन्द्र–बलि संग्राम

रक्षा–बन्धन के सम्बन्ध में अनेक पौराणिक एवं लोकाख्यान प्रचलित हैं। समुद्र मंथन होने पर सब कुछ देवता ले गए, दानवों के हाथ कुछ नहीं लगा। तब दानवों को संगठित कर के दानव–राज बलि ने देवताओं पर घोर आक्रमण किया। देवराज इन्द्र भयभीत हो गया। इन्द्राणी ने ऐसे संकट के समय में गुरु बृहस्पति से परामर्श लेने को कहा। इन्द्र पूरी तरह हताश थे। गुरु बृहस्पति भी कोई मार्ग नहीं सुझा पा रहे थे। ऐसे समय में नारी शक्ति इन्द्राणी का पराक्रम उद्भूत हुआ। उसने कहा, गुरु महाराज! मैं एक रक्षा सूत्र बनाती हूँ। उस रक्षा सूत्र को अभिमन्त्रित करके आप देवराज और देव सेना को बांधे

तो देवताओं की विजय निश्चित है। गुरु बृहस्पति को यह सुझाव उचित लगा। रक्षा –सूत्र तैयार करवाये गए। इन रक्षा सूत्रों में अभिमन्त्रित कर के शक्ति का संचार किया गया। श्रावणी पूर्णिमा का दिन था। कुछ रक्षा सूत्र गुरु बृहस्पति ने राजा इन्द्र तथा इन्द्र परिवार के हाथ में बांधे। अन्य पुरोहितों द्वारा ये सूत्र सेना और प्रजा के अन्य लोगों के रक्षा की आशीष के साथ बांधे गए। इस के उपरान्त इन्द्र ने दैत्यों पर आक्रमण कर दिया जिसमें दैत्य परास्त हुए और राजा बलि मारा गया। दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से उसे पुन: जीवित कर दिया। तब बलि ने गुरु शुक्राचार्य के परामर्श पर विश्वजित् यज्ञ का आयोजन किया जिसके अन्तर्गत उसने निन्यानवे यज्ञ पूरे किए। अन्तिम सौवां यज्ञ पूर्ण करना शेष था। उस से पहले भगवान ने वामन रूप में उन से तीन पग स्थान मांगा। बलि ने संकल्प कर के स्थान दे दिया। वामन भगवान ने त्रिविक्रम रूप धारण करके एक पग से पृथ्वी मापी, दूसरे पग से आकाश मापा और तीसरे पग के लिए स्थान मांगा। भगवान ने बलि के कहे अनुसार उसके सिर पर पग रखा और वह पाताल चला गया। बलि राजा भगवान विष्णु का परम भक्त था। इसीलिए वह पातालपुरी का राजा बना और स्वयं भगवान उसके द्वारपाल बने। उसे यह वरदान मिला कि सवार्णि मन्वन्तर में वह इन्द्र बनेगा। बलि को पूरी मान–प्रतिष्ठा मिली, लेकिन वह विश्वजित् यज्ञ से इन्द्र का शासन नहीं छीन सका, क्योंकि यह शासन रक्षा–बन्धन से सुरक्षित था। इसी पुरा–ऐतिहासिक परम्परा के अनुगमन में पुरोहितों द्वारा यजमानों को रक्षा–बन्धन बांधा जाता है।

भाई–बहन का त्यौहार

श्रावणी पूर्णिमा में बहन द्वारा भाई की कलाई में राखी बांधने के त्यौहार के रूप में मनाने की परम्परा के सम्बन्ध में बतलाया जाता है कि एक बार श्रावण पूर्णिमा के दिन भगवान् श्रीकृष्ण की कलाई में चोट लग गई और उस चोट से खून बहने लगा। उस समय द्रोपदी ने अपनी साड़ी का पल्लू फाड़कर, उस कपड़े की पट्टी को श्रीकृष्ण की कलाई में बांधा जिससे खून बहना बन्द हुआ तथा चोट की पीड़ा से आराम मिला। द्रौपदी सदा भगवान् श्रीकृष्ण को बड़ी आत्मीयता के साथ भाई कहती थी। यह बहन द्वारा कलाई बांध कर भाई की कष्ट से रक्षा की गई थी। इसी रक्षा–बन्धन के उपकार में जब दु:शासन द्वारा भरी सभा में द्रौपदी की साड़ी उतारी जा रही थी तो श्रीकृष्ण ने बहन द्रौपदी के सत्त्व की रक्षा की थी और उसका चीर हरण असफल कर दिया था। इस प्रकार रक्षा–बन्धन भाई–बहन के प्यार का पावन त्यौहार बना गया।

भाई–बहन के प्यार के इस पावन त्यौहार में बहन द्वारा भाई के पराक्रम और वीरता की कामना के साथ स्वत्व रक्षा का भाव रहता है। इस भाव में प्यार की शक्तिशील पवित्रता है। अब इस पवित्रता में देखा–देखी उपहारों के लेने–देने की परिपाटी बढ़ रही है। ऐसी परिपाटियों से आर्थिक रूप से कम समर्थ लोगों को विवशता में पीसना पड़ता है। प्रयत्न यही रहना चाहिए कि इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से इस त्यौहार को हम

संस्कारवान् रीति से मनाएं और आर्थिक विनिमय की परिपाटी से इसे बचाएं।

यह बहुत प्रशंसनीय प्रयास है कि अनेक महिला संगठन की बहनें इस पावन दिवस पर भारतीय सैनिकों को राखी बांधती हैं। यह केवल दिखावटी परम्परा न बने। इसके लिए उदात्त भ्रातृ भाव का उद्‌बोध कर सैनिक भाईयों में देश की रक्षा के गौरवशाली पराक्रम का संचार करें।

स्वाध्याय का पर्व

वैदिक ऋषियों ने कहा है ***स्वाध्यायन्मा प्रमद:*** अर्थात् स्वाध्याय की कभी उपेक्षा न करें। स्वाध्याय से ही जीवन के चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है। श्रावणी पूर्णिमा के दिन से गुरुकुलों में शिष्यों को वेद अध्ययन का समारम्भर करवाया जाता था जो स्वाध्याय का मूल स्रोत है। वेदाध्ययन के शुभारम्भ को उपाकर्म कहते हैं। अत: यह दिन श्रावणी उपाकर्म भी कहलाता है। श्रावणी उपाकर्म के अन्तर्गत,यज्ञोपवीत पूजन एवं पुराना यज्ञोपवीत उतार कर नया यज्ञोपवीत धारण करने का भी विधान है।

स्वाध्याय का अर्थ है अपना अध्ययन करना, अपने को जानना, परमात्मा और आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना। स्वाध्याय के लिए जहां वेद–शास्त्रों के अध्ययन का महत्त्व है, वहां वेद–शास्त्र के प्रवचन श्रवण से भी स्वाध्याय सिद्ध होता है।

भारत कृषि प्रधान देश है। यहां पर जीवन यापन कृषि पर आधारित है। अत: यहां के लोग अधिकांशत: कृषि कर्म में व्यस्त रहते हैं लेकिन, वर्षा काल से पहले मुख्य कृषि कार्य सम्पन्न हो जाता है। इसी बीच वर्षा काल में ऋषि–मुनि, सन्त–महात्मा भी अरण्यवास त्याग कर गांव और नगरों की ओर आ जाते हैं और चार मास समाज के बीच रह कर समाज का मार्गदर्शन करते हैं। इसे चतुमास काल कहते हैं। चतुमास में ऋषि समाज से प्रवचन श्रवण करके जन–साधारण एवं कृषि कर्मी स्वाध्याय का ज्ञान प्राप्त करते थे। ऋषि आश्रमों में यह स्वाध्याय ज्ञान श्रावणी पूर्णिमा को आरम्भ होता था। अत: श्रावणी पूर्णिमा को स्वाध्याय पर्व कहते हैं।

भारत में स्वाध्याय ज्ञान की समृद्ध परम्परा संस्कृत के विपुल साहित्य में संरक्षित है। इस दृष्टि से स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने संस्कृत भाषा के उत्थान की कामना से संस्कृत आयोग का गठन किया था। इस आयोग ने श्रावणी पूर्णिमा को स्वाध्याय पर्व के रूप में मनाने की परम्परा को ध्यान में रखते हुए इस दिन को संस्कृत दिवस के रूप में मनाने की संस्तुति की थी। इस संस्तुति को भारत सरकार ने स्वीकार किया और उसी आधार पर श्रावणी पूर्णिमा के पावन त्यौहार के दिन सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रतिवर्ष संस्कृत दिवस मनाया जाता है।

शोध संस्थान, गांव नेरी,
डा० खगल, जिला हमीरपुर (हि०प्र०)

ध्येय पथ ✍

हिमाचल की गोद में करवट बदल रहा है गौरवशाली अतीत

● नरेन्द्र सहगल

हिमाचल प्रदेश के हमीरपुर जिले में सुरम्य पहाड़ियों के बीच बसे नेरी गांव में इतिहास करवट बदल रहा है। गत ४ अप्रैल २००९ को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री मोहन राव भागवत ने यहां नवनिर्मित ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान में भारतीय इतिहास संकलन योजना के प्रेरक पुरुष स्वर्गीय मोरोपंत पिंगले के चित्र का अनावरण किया। इस अवसर पर उपस्थित शोधकर्ताओं एवं लेखकों को सम्बोधित करते हुए श्री मोहन राव भागवत ने कहा कि इतिहास घटित होता है न कि निर्देशित। दुर्भाग्य से वर्तमान में कुछ इतिहासकार सारे विश्व के इतिहास को निर्देशित करके एक निश्चित दिशा में मोड़ने का काम कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि इतिहास के इस व्यापारीकरण का सबसे ज्यादा शिकार भारत ही हुआ है। अपने राजनीतिक उद्देश्य और पांथिक उग्रवाद के विस्तार के लिए एक सोची–समझी मुहिम चलाई जा रही है। हिन्दुत्व और मानवता के हमारे वैज्ञानिक आधार को जड़ से उखाड़ने के लिए हमारे प्राचीन गौरवशाली इतिहास का चेहरा बिगाड़ा जा रहा है, लेकिन भारत और समस्त मानवता के सौभाग्य से इस षड्यंत्र के विरुद्ध एक प्रबल संघर्ष की शुरुआत हो चुकी है। इस वैचारिक युद्ध का केन्द्र राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। यह वैचारिक युद्ध दैवीय और राक्षसी ताकतों के बीच लड़ा जा रहा है। श्रीराम और दैवीय शक्तियों की विजय होगी, इसमें सन्देह नहीं है।

श्री भागवत ने शोध संस्थान के अधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ाते हुए कहा कि प्रारंभ में अनेक कठिनाईयां आएंगी। श्रीराम के समक्ष भी अनेक बाधाएं उत्पन्न हुई। परंतु जब उनकी अजेय शक्ति का ईश्वरीय रूप प्रकट हुआ तो उनके साथ सभी देवता खड़े हो गए। इन्द्र देवता ने भी अपना विशेष विजय रथ श्रीराम को समर्पित किया। वर्तमान 'राम–रावण युद्ध' में भी समस्त दैवीय शक्तियां राम का साथ देंगी। हमारी बाधाएं हटेंगी और हम भारत के गौरवशाली अतीत को फिर से संसार के सामने प्रकट करने में सफल होंगे। हमारा राष्ट्र आज जागृत हो रहा है। अत: आज इतिहास के स्फूर्तिदायक प्रसंगों के सत्यान्वेषण को संसार के सामने प्रस्तुत करना अति आवश्यक है। हिमालय की गोद में स्थापित यह शोध संस्थान इस कार्य में यशस्वी होगा।

उल्लेखनीय है कि विश्व गुरु भारत के हजारों वर्ष पुराने गौरवशाली इतिहास को विकृत करने में विदेशी शासकों ने कोई कसर नहीं छोड़ी। अपने साम्राज्यवादी,

आक्रामक और राक्षसी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारत के अतीत, वैज्ञानिक जीवन मूल्यों, मानवीय सामाजिक रचना और समस्त विश्व के कल्याण के लिए समर्पित देवी–देवताओं की अखंड श्रृंखला को अत्यंत विद्रूपता के साथ प्रस्तुत किया गया है। दुख की बात यह है कि गत १२०० वर्षों से विदेशी शासकों द्वारा चलाया जा रहा यह हिन्दू विरोधी अभियान आज भी जारी है। भारत राष्ट के श्रेष्ठ अतीत को बिगाड़ने में इस अभियान को जारी रखने का जघन्य कार्य, आक्रामक इस्लाम के झंडाबरदार, साम्राज्यवादी ईसाई जगत के अनुयायी, संस्कृति और धर्म के दुश्मन साम्यवादी और लार्ड मैकाले के कदमों पर चलने वाले कांग्रेसी सत्ताधारी कर रहे हैं। भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य को बिगाड़ने के इस विदेशी षडयंत्र का पर्दाफाश करते हुए 'वास्तविक भारत' को दुनिया के सामने लाने का बीड़ा उठाया है ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान ने। यह शोध संस्थान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा संचालित भारतीय इतिहास संकलन योजना का एक प्रकल्प है। इस प्रकल्प की सभी योजनाओं, कार्यक्रमों और इतिहास शोध की गतिविधियों के प्रेरक संचालक और सूत्र हैं संघ के ९४ वर्षीय कर्मठ प्रचारक ठाकुर राम सिंह जी।

ठाकुर रामसिंह हिमाचल प्रदेश के हमीरपुर जिले में झण्डवीं गांव के रहने वाले हैं। एफ.सी. कालेज, लाहौर (पाकिस्तान) से १९४२ में इतिहास विषय में एम. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उतीर्ण करने वाले ठाकुर राम सिंह ने सरकारी नौकरी को ठुकराकर संघ के प्रचारक के रूप में अपना जीवन राष्ट्र सेवा के चरणों में अर्पित कर दिया। १९८८ में ठाकुर रामसिंह को 'अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना' का कार्य सौंपा गया। १९९२ में वे योजना के अखिल भारतीय अध्यक्ष बने।

श्री ठाकुर के अथक प्रयासों, अखंड लग्न और गहरी सूझबूझ के फलस्वरूप ही इस शोध संस्थान की स्थापाना हुई है, जो व्यास नदी की सहायक नदी कुणाह के तट पर स्थित है। वैदिक वाङ्मय के अनुसार, हमीरपुर से करीब ४००किलो मीटर दूर सुमेरु पर्वत पर पहले मानव की उत्पत्ति हुई। इसलिए यह सारा क्षेत्र संसार का जन्मस्थान माना जाता है। विश्व के सभी देश, धर्म, जातियों का यह उद्गम स्थल भारत के प्राचीन इतिहास का भी जनक है। प्रदेश सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई ५१ कनाल भूमि पर यहां दो भव्य विशाल भवन बने हैं। इन दोंनों भवनों पर लगी लगभग ६५ लाख रुपये की राशि ठाकुर रामसिंह के एक मित्र, प्रशंसक और संघ की अमृतसर शाखा के पुराने स्वयंसेवक स्वर्गीय इन्द्रजीत कपूर ने अर्पित की। मुम्बई के उद्योगपति इन्द्रजीत कपूर ने यह राशि ठाकुर राम सिंह जी के राष्ट्र प्रेम, तपस्वी जीवन और भारतीय इतिहास के गौरव को पुन: स्थापित करने की उनकी मानसिक दृढ़ता से प्रभावित होकर दी है। शोध संस्थान के दोनों भवन क्रमश: २० मार्च २००५ और २७ अक्तूबर, २००६ को तैयार हो गए थे और इनका उद्घाटन तत्कालीन सरकार्यवाह श्री मोहनराव भागवत और सरसंघचालक श्री कुप्.सी. सुदर्शन जी ने किया था। इन दोनों भवनों में विशाल पुस्तकालय, कम्पयूटरीकृत लैब,

वाचनालय, भोजनालय, विद्वानों के ठहरने की व्यवस्था, सभागार, खुला मैदान और भवनों के तीन ओर बगीचा है। शोध संस्थान की संगठनात्मक संरचना में निदेशक मण्डल, मार्गदर्शक परिषद और वैचारिक मण्डल का गठन किया गया। शोध सामग्री की सुलभता के लिए अभिलेखागार, संग्रहालय और पुस्तकालय का समुचित प्रावधान किया जा रहा है। स्व. मोरोपंत के चित्र के अनावरण के साथ ही ३,४,५ अप्रैल को शोध संस्थान की वार्षिक कार्य योजना बैठक भी हुई ।

इस बैठक में हिमाचल प्रदेश के प्रान्त कार्यवाह श्री चेतराम जी पूरा समय रहे। इसके अतिरिक्त निदेशक मण्डल के सदस्य सर्वश्री देवराज शर्मा, प्रेमसिंह भरमौरिया, वैचारिक पक्ष के प्रमुख डॉ विद्या चन्द ठाकुर, प्रचार—प्रसार प्रमुख डॉ. रमेश शर्मा, लेखक प्रमुख डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, डॉ. कुलदीप अग्निहोत्री, दिल्ली से सुदर्शन सरीन, अविनाश जायसवाल, राजस्थान से घनश्याम माथुर, डॉ. शान्ति स्वरुप चड्डा, हरियाणा से युयुत्सु, जम्मू से डॉ. सुदर्शन आदि ने बैठक में सम्मिलित हुए।

इस बीच स्वर्गीय मोरोपंत पिंगल जी के चित्र के अनावरण के उपरान्त स्वर्गीय मदन गोपाल चिटकारा के पुत्र श्री अनूप चिटकारा, एडवोकेट ने अपने स्वर्गीय पिता की याद में पूजनीय संरसंघचालक जी के हाथों श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी को स्वर्गीय चिटकारा द्वारा लिखित तथा अन्य दुर्लभ पुस्तकों का संग्रह शोध संस्थान के लिए भेंट किया। स्वर्गीय मदन लाल चिटकारा हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायलय के जाने—माने अधिवक्ता थे। वे हिमाचल प्रदेश सरकार के महाधिवक्ता तथा हिमाचल प्रदेश प्रशासनिक प्राधिकरण के उपाध्यक्ष के महत्त्वपूर्ण पद पर भी आसीन रहे। बौद्ध साहित्य तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनूठे साहित्य सृजन में शिमला कैथू निवासी स्वर्गीय चिटकारा का अमूल्य योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

स्वर्गीय पिंगले संघ संस्थापक डा. केशवराव बलिराम हेडगेवार के साथी स्वयंसेवक थे और जीवन पर्यन्त प्रचारक रहकर संघ कार्य में संलग्न रहे। पिंगले जी मानते थे कि 'भारत का इतिहास विस्तृत है। यह तो इस पृथ्वी पर प्रथम मानवोत्पत्ति से शुरू होकर १९७ करोड़ वर्षों का इतिहास है। इसके अनुसंधान के लिए देश की चारों दिशाओं में चार शोध केन्द्रों की स्थापना की जरूरत है।' यह शोध संस्थान देश भर के संभावित शोध संस्थानों का मुख्य कार्यालय भी रहेगा। शोध संस्थान के वैचारिक पक्ष के निदेशक डा. विद्या चन्द ठाकुर के शब्दों में— 'यह संस्थान भारत के इतिहास का पुनर्लेखन भारतीय स्रोतों, पुरातत्व की नवीन खोजों और आधुनिक अनुसंधानों के प्रकाश में राष्ट्र जीवन के सभी पक्षों का सजीव चित्र प्रस्तुत करने के लिए प्रतिबद्ध है।'

५सी/२२, न्यू रोहतक रोड़,
लिबर्टी सिनेमा के सामने,
करोल बाग, नई दिल्ली।

इतिहास लेखन कार्यशाला का आयोजन

गत ज्येष्ठ शुक्ल ८, कलियुगाब्द ५१११ (ई०सन् ३१ मई, २००९) को ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी में 'इतिहास लेखन की विधि एवं दिशा' पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में शोध संस्थान के मार्ग दर्शक श्रद्धेय ठाकुर राम सिंह जी ने कहा कि ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान ने दुनिया को तथ्यों पर आधारित भारत का गौरवशाली इतिहास बताने की जिम्मेवारी स्वीकार की है। शोध संस्थान से जुड़े लेखकों एवं शोधार्थियों को १९७ करोड़ वर्ष के इतिहास का पुनर्लेखन करना है। उन्होंने बताया कि १९७ करोड़ वर्ष पूर्व सर्वप्रथम सुमेरु पर्वत पर सृष्टि रचना हुई और यह हमारे आदि पुरुष ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पावन भूमि है। आज खेद की बात यह है कि भारतीय शोधार्थियों से अधिक यूरोपीय शोधकर्ता इस विषय पर भारत में कार्य कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि संस्कृत विश्व की सब भाषाओं की जननी होने के बावजूद भारत में ही उपेक्षित है। एक समय था जब यूरोपीय इतिहासकार यह आरोप लगाते थे कि भारत में इतिहास लेखन की दृष्टि ही नहीं है, मगर यह सरासर झूठ था। जितनी पुरानी इतिहास लेखन और पठन की परंपरा भारतवर्ष में है पाश्चात्य जगत उसकी तो कल्पना भी नहीं कर सकता। महर्षि वेद व्यास ने इतिहास को पंचम वेद कहा है। उन्होंने आगे बताया कि रामायण, महाभारत, भागवत पुराण आदि क्या भारत का इतिहास नहीं हैं? मैकाले के मानस पुत्रों ने इस देश के इतिहास को विकृत किया है, उसे हमें तथ्यों और भारतीय पद्धति से लिखने की आवश्यकता है।

निदेशक मण्डल के अध्यक्ष श्री विजय मोहन कुमार पुरी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि भारत की लोक परंपराओं व जनश्रुतियों में ज्ञान का असीम भण्डार है। वह सारे का सारा संकलित किया जाना चाहिए।

इस कार्यशाला के संचालक डॉ० ओम प्रकाश शर्मा के अतिरिक्त, हमीरपुर से डॉ० रमेश शर्मा, डॉ० एस के बंसल, श्री भूमिदत शर्मा, राकेश शर्मा, अरूण कश्यप, अजय शर्मा, लाहौल–स्पिति छेरिंग दोरजे, मकुल्लू दानवेन्द्र सिंह, ऊना से विश्वास शर्मा, रमण शर्मा ने इस कार्यशाला में भाग लिया।

कार्यशाला सम्पन्न होने के उपरान्त शोध संस्थान के प्रांगण में श्रद्धेय ठाकुर राम सिंह के करकमलों द्वारा एक नीम का पौधा लगाया गया। इस प्रकार संस्थान द्वारा आयोजित लेखकों की प्रथम कार्यशाला सफलता पूर्वक सम्पन्न हुई।

LAKHI HOSPITAL

Amb Road, DAULATPUR CHOWK (Chalet),
Distt. Una (H.P.)-177204

Ph.: 01976-266511

Dr. Ashish Lakhi
(MBBS, HPHS (Ex)
Reg. No. EP 23361
Cell No. +91-94180-87611

Dr. Mrinal Lakhi
(MBBS, HPHS (Ex)
Reg. No. EP 26146
Cell No. +91-94180-86611

FACILITIES AVAILABLE

Fully Equipped, Operation Theater, All Major Surgeries, All Minor Surgeries, Caesarean Section, Laproscopic Surgeries, Fully Equipped Lab, Ultrasound, X-Ray, E.C.G., I.C.U., Indoor Facility, Private Rooms, Fully Equipped Labour Room, Photo Therapy, Radiant Warmer, Short Wave Diathermy, Physiotherapy, Generator.

M/S A.B. SOAP & CHEMICAL FACTORY

KATOHER KALAN TEH. AMB
DISTT. UNA (H.P)

THE CHURRU BEHARI
CO-OP AGRI. SERVICE SOCIETY PVT. LTD.

PO CHURRU TEH. AMB. DISTT. UNA (H.P)

PARDHAN
RAGHU DUTT

SECRETARY
PARM JEET SINGH

श्री सिद्ध बाबा बालक नाथ मन्दिर न्यास दियोटसिद्ध
जिला हमीरपुर(हिमाचल प्रदेश) न्यास स्थापना १६.०१.१९८७

२२वीं जयन्ती के शुभ अवसर पर बाबा जी की सुख समद्धि का आशीर्वाद सदैव बना रहे, बाबा जी से यही प्रार्थना है। भारतीय संस्कृति की विराट पृष्ठभूमि में विद्यमान दिव्य स्थलों में से उत्तरी भारत का प्रसिद्ध पीठ श्री सिद्ध बाबा बालक नाथ के परमधाम शिवालिक पर्वतों श्रद्धालुओं में पुण्य प्रतापों के बल पर निरन्तर महिमावान है। यह दिव्य स्थल हि०प्र० के जिला हमीरपुर में दियोटसिद्ध नामक सुरमई पहाड़ी पर प्रतिष्ष्ति है। यह दिव्य स्थल चारों ओर से सड़कों से जुड़ा हुआ है। श्री सिद्ध बाबा बालक नाथ द्वारा दियोटसिद्ध में अपना दिव्य स्थान स्थापित करने से पूर्व शाहतलाई को अपना कर्म स्थल बनाया था। शाहतलाई की दूरी इस इस पावन स्थल से ५ कि०मी० है।

हिमाचल प्रदेश हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्था और पूर्व विन्यासअधिनियम १९८४ के अन्तर्गत दिनांक १६.०१.१९८७ से जब से मन्दिर के संचालन को मन्दिर न्यास ने संभाला है तब से लेकर श्रद्धालुओं व दानियों द्वारा बाबा जी की पवित्र धरती पर श्रद्धालुओं के कदम पड़ते ही उनका स्वागत द्वारों से भव्य स्वागत, जगह–जगह पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्थायें, वर्षा शालिकायें, विश्राम करने के लिए बैंच, बिना लाभ–हानि के दो कंटीनें, निःशुल्क चिकित्सा सेवा, शौचालयों व स्नानागारों की व्यवस्था जानकारी के लिए स्वागत द्वारों में पूछताछ केन्द्र, खोई वस्तुओं और व्यक्तियों को ढूंढने के लिए पी०ए० सिस्टम की व्यवस्था कक्ष केन्द्र भी स्थापित किया गया है। श्रद्धालुओं के लिए मन्दिर परिसरमें दर्शनार्थ स्थलों में मुख्यतः गूफा दर्शन बाबा जी का अखण्ड धूना, धार्मिक पुस्तकालय, भृर्तहरि मन्दिर, राधा–कृष्ण मन्दिर, चरणपादुका व बाबा जी की तलाई दर्शनीय स्थल है। न्यास स्थापना १६.०१.१९८७ से आज तक विकास की लम्बी यात्रा तय की है जिसने मुख्यतः स्वागतद्वारों के निमार्ण, बस स्टैंड का निर्माण, भव्य सरायों का निर्माण, लंगर भवन, बकरा स्थल, महिलओं के लिए गुफा दर्शन पलेटफार्म, शौचालय व स्नानागारों , पुरूष व महिलाओं की आवाजाही के अलग रास्तों व शिक्षा में जनता की सेवा में स्नात्कोतर महाविद्याल, संस्कृत महाविद्यालय, उच्च विद्यालय, माडल स्कूल के भवनों का निर्माण किया गया है तथा शिक्षा संस्थानों का संचालन किया जा रहा है।

भविष्य के निर्माण के लिए न्यास प्रस्तावित नई योजनाएंः–

आधुनिक बस स्टैण्ड के द्वितीय चरण के निर्माण व पेयजल आपूर्ति की योजना के विस्तार पर अनुमानित २ करोड़ रूपये की राशि व्यय करने का अनुमान है तथा २० निर्माण कार्यों को आरम्भ करने की योजना है। जिसमें यात्रियों को भविष्य में बड़े पैमाने पर ठहरने के लिए मन्दिर परिसर में विभिन्न स्थानों पर सरायों का निर्माण करना, स्नानागार, शौचालय, मन्दिर परिसर के रास्तों में टाईल्स लगाने का कार्य इत्यादि कार्यों की योजना चरणबद्ध तरीके से संचालित की जा रही है इन योजनाओं पर लगभग १.५० करोड़ रूपये की राशि व्यय करने का अनुमान है।

श्रद्धालुओं/दानियों से न्यास प्रशासन का परम निवेदन रहेगा कि मन्दिर के विकासात्मक कार्य यज्ञ में दान रूपी आहूति डालकर पुण्य के भागी बनें और बाबा जी का आर्शीवाद व वांछित फल पायें। दान की गई राशि की रसीद आवश्य प्राप्त करें और ***<u>आयकर अधिनियम की धारा ८० जी</u>*** के अन्तर्गत आयकर से छूट का लाभ उठायें।

मदन लाल शर्मा,
मन्दिर अधिकारी,
न्यास बाबा बालक नाथ मन्दिर
दियोट सिद्ध जिला हमीरपुर
हि०प्र०
का–०१९७२–२८६३५४

सुखदेव सिंह,
(हि०प्र०से०)
उपमण्डलाधिकारी
एवं अध्यक्ष न्यास बाबा बाबा बालक
नाथ मन्दिर दियोट सिद्ध स्थित बड़सर
जिला हमीरपुर हि०प्र० का०:०१९७२–२८८८०४५

अभिषेक
(भा०प्र०से०)
उपयुक्त एवं आयुक्त
बाबा बालक नाथ मन्दिर
दियोटसिद्ध स्थित हमीरपुर हि०प्र०
का० ०१९७२–२२४३००